आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

# विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष–१८ अगस्त–१९९९ अंक–८

रामकृष्ण निलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७३. डॉ० विनया मेण्डमे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष धोनी, रामबन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्मन, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एम० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलॉंग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी विरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पाहुडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपूर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३ श्री ओम भक्त बुढाथोकी—डांग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)
२०५. हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी—काराधीक्षक, गिरिडी

---

# इस अंक में


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. श्रीरामकृष्ण ने कहा है | | १ |
| २. गीति वन्दना | | २ |
| ३. अग्नि-वेणु | स्वामी विवेकानन्द | ३ |
| ४. अ चेतन-अनुभूति का लक्ष्य | स्वामी यतीश्वरानन्द | ४ |
| ५. श्रीरामकृष्ण का अज्ञात पहलु | स्वामी भजनानन्द | ९ |
| ६. मानस के आदर्शों का व्यावहारिक पक्ष | स्वामी आत्मानन्द | १५ |
| ७. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान (५) | स्वामी शशांकानन्द | १९ |
| ८. सरल करो प्रभु सरल करो (कविता) | श्री रवि प्रकाश | २५ |
| ९. सम्पूर्ण जीवन की योजना-आश्रम व्यवस्था | श्री जितेन्द्र वीर गुप्ता | २६ |
| १०. स्वामी विवेकानन्द मुझे क्यों प्रिय हैं ? | श्री रवि प्रकाश | २९ |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ अगस्त—१९९९ अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

**सम्पादक :**

डा० केदारनाथ लाभ

**सहायक सम्पादक :**

ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

**सम्पादकीय कार्यालय :**

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
( बिहार )
फोन : ०६१५२-२२६३९

**सहयोग राशि :**

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य— | ७०० रु० |
| वार्षिक— | ५० रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से | ६५ रु० |
| एक प्रति— | ५ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

☐ स्वयं को धूल और कीचड़ में सानना बच्चे का स्वभाव ही होता है किन्तु माँ उसे सब समय गन्दा नहीं रहने देती। वह बीच-बीच में उसे धो-पोंछकर साफ कर देती है। इसी प्रकार पाप करना मनुष्य का स्वभाव है। किन्तु उसका पाप करना जितना निश्चित है उससे अधिक यह निश्चित है कि भगवान् उसकी पाप-मुक्ति के लिए नये-नये उपाय निकालते हैं।

☐ जिसने अपना मन-प्राण, अन्तरात्मा पूरी तरह ईश्वर को समर्पित कर दिया है वही सच्चा साधु है। जिसने कामिनी और कांचन का त्याग कर दिया है वही सच्चा साधु है। वह स्त्रियों को अपनी माता की तरह पूज्य दृष्टि से देखता है। वह सदैव भगवान् का चिन्तन करता है और सर्व भूतों में भगवान् विराजमान हैं यह जानकर सब की सेवा करता है।

☐ जब तुम निर्जन में साधना करो तब परिवार से बिल्कुल दूर रहो। उस समय अपनी पत्नी, लड़के, लड़की, माता, पिता, बहिन, भाई, इष्ट मित्र अथवा रिश्तेदारों को भी पास मत आने दो। निर्जन में साधना करते हुए विचार करो, 'संसार में मेरा कोई नहीं है। भगवान् ही मेरे सर्वस्व हैं।' ज्ञान और भक्ति के लिए रोते हुए भगवान् से प्रार्थना करो।

☐ केवल उन्हीं कामों को करो जो तुम्हारे सामने आ पड़े हैं और जिन्हें किये बिना नहीं चल सकता। उन्हें भी निष्काम भाव से करो। जान-बूझ कर स्वयं को बहुत अधिक कामों में उलझा लेना अच्छा नहीं है। इससे मनुष्य भगवान को भूल जाता है।

# गीति-वन्दना

( १ )

( केदार-रूपक )

हे रामकृष्ण दयानिधे चरणों में आश्रय दीजिए,
मम दीन आकुल प्रार्थना, सुनकर भी क्यों न पसीजिए ।।

आया हूँ सब कुछ छोड़कर, अपनों से नाता तोड़कर,
स्वीकार कर निज गोद में, दुख दूर मेरे कीजिए ।।

संग भेंट-पूजा कुछ नहीं, नाराज ना होना कहीं,
यह तुच्छ जीवन आपका, स्वीकार ही कर लीजिए ।।

मैं दीन और मलीन हूँ, जलहीन मानो मीन हूँ,
अब हे सुधासागर प्रभो, सुख आप ही में है जिए ।।

( २ )

( आसावरी-कहरवा )

जपो मन रामकृष्ण अविराम ।
जो चाहो सुख-शान्ति जगत् में, पूरन सबविध काम ।।

परम मधुर प्रिय अमिय प्राण का, औषध भव से परित्राण का
देता है यह मंत्र अलौकिक, तन-मन को विसराम ।।

दीन-दुखी आश्रित जन तारक, पाप और सन्ताप निवारक,
भक्तजनों का एकमात्र यह, चिन्मय चिर सुखधाम ।।

श्रद्धा-भक्ति जगाये नर में, प्रज्ञा दीप जलाये उर में,
पाने को यह चिर अमोल धन, लगता नहीं छदाम ।।

तजकर जग की माया विषमय, जनम-मरण से होकर निर्भय,
रखना सदा नाम जिह्वा पर, मधुमय आठों याम ।।

—विदेह

# अग्नि-वेणु

## ( मुहम्मद सरफराज हुसैन को लिखित )

अल्मोड़ा;
१० जून, १८९८

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पढ़कर मैं मुग्ध हो गया और मुझे यह जानकर अति आनन्द हुआ कि भगवान चुपचाप हमारी मातृभूमि के लिए अभूतपूर्व चीजों की तैयारी कर रहे हैं। चाहे हम उसे वेदान्त कहें या किसी अन्य नाम से पुकारें, परन्तु सत्य तो यह है कि धर्म या विचार के क्षेत्र में अद्वैत ही अन्तिम शब्द है और केवल उसी के दृष्टिकोण से सब धर्मों तथा सम्प्रदायों को प्रेम से देखा जा सकता है। हमें विश्वास है कि भविष्य में प्रबुद्ध मानवी समाज का यही धर्म है। अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दुओं को यह श्रेय प्राप्त होगा कि उन्होंने ही इसकी सर्वप्रथम खोज की। इसका कारण यह है कि वे अरबी और हिब्रू दोनों जातियों से अधिक प्राचीन हैं। परन्तु साथ ही व्यावहारिक अद्वैत—जो सम्पूर्ण मानवजाति को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करता है—का विकास हिन्दुओं में सार्वभौमिक भाव से होना अभी भी बाकी है।

इसके विपरीत हमारा अनुभव यह है कि यदि किसी धर्म के अनुयायी व्यावहारिक जगत के दैनिक कार्यों के क्षेत्र में, इस समानता को उचित अंश में ला सके हैं, तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुयायी ही हैं—यद्यपि सामान्यतः जिस सिद्धान्त के अनुसार ऐसे आचरण का अवलम्बन है, उसके गम्भीर अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं, जिसे कि हिन्दू साधारणतः स्पष्ट रूप से समझते हैं।

इसके विपरित हमारा अनुभव यह है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और बिलक्षण क्यों न हों, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना, मनुष्य जाति के महान जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन हैं। हम मनुष्य-जाति को इस स्थान तक पहुँचाना चाहते हैं, जहाँ न वेद है न बाइबिल और न कुरान; परन्तु वेद, बाइबिल तथा कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य-जाति को यह शिक्षा देनी चाहिए कि सब धर्म उसी धर्म के, उसी एकमेवाद्वितीय के भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मों में से अपना मनोनुकूल मार्ग चुन सकता है।

हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य—हिन्दुत्व और इस्लाम वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर—यही एक आशा है।

मैं अपने मानस-चक्षुओं से भावी भारत की उस पूर्णवस्था को देख रहा हूँ, जिसका इस विप्लव तथा संघर्ष से तेजस्वी तथा अजेय रूप में वेदान्ती बुद्धि तथा इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा।

सर्वदा मेरी यही प्रार्थना है कि प्रभु आपको मनुष्य-जाति की सहायता के लिए, विशेषतः हमारी अत्यन्त निर्धन मातृभूमि के लिए एक शक्तिशालि यंत्र बनावे।

भवदीय स्नेहबद्ध,

—विवेकानन्द

# अतिचेतन-अनुभूति का लक्ष्य (२)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

**अज्ञान और उस पर विजय**

इस दिव्य चक्षु की प्राप्ति में हमारी बाधा क्या है? वेदान्त के आचार्यों के अनुसार वह अज्ञान है। पतंजलि भी कहते हैं कि अज्ञान पुरुष की दृष्टि को आवृत कर देता है। योग सूत्रों में हम पाते हैं: अनित्याशुचि दु:खानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या। (पातंजल योगसूत्र: २ : ५) अर्थात् अनित्य, अशुचि, दु:खदायक और अनात्मा को नित्य, शुचि, दुखदायक और आत्मा समझना अविद्या है। अज्ञान का कारण यह है कि ईसाई धर्म, इसलाम और यहूदी आदि कुछ धर्मों में विश्वास और नैतिकता को मुक्ति के प्रमुख उपायों के रूप में अधिक महत्व दिया गया है। इन धर्मों के अनुयायियों के लिये यह अपेक्षित होता है कि वे उन धर्मों के संस्थापक पैगंबरों पर पूर्ण विश्वास रखें। प्रत्येक धर्म अपने संस्थापक पैगंबर को श्रेष्ठतम कहता है, तथा इसे न मानने वाले लोगों की मुक्ति नहीं होगी, अर्थात् वे नर्क में जायेंगे। ऐसी मान्यताओं के बावजूद इन धर्मों ने अत्युत्कृष्ट सन्तों को पैदा किया है, जिन्हें ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई थी। मिस्टिसिजम अर्थात् अपरोक्षानुभूति और इसके साधनपथ को ईसाई धर्म तथा इस्लाम में धर्म का आवरण तथा महत्वपूर्ण अंग कभी नहीं माना गया है। अनेक ईसाई ऋषियों को ईसाई-धर्म-संघ के द्वारा दिये गये दंड को सहना पड़ा है। सत्रहवीं शताब्दी में "क्वायटिस्ट" नामक शान्तिवादी आन्दोलन का कठोरता से दमन किया गया था। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी में ईसाई धर्म संघ के बाहर तथा भीतर अपरोक्षानुभूतिवाद - विरोधी आन्दोलन इसके प्रबल थे कि वर्तमान सदी के प्रारंभ तक ईसाई धर्म ने अपनी महान अपरोक्षानुभूति परंपरा को लगभग भुला ही दिया था। इस्लाम में अपरोक्षानुभूतिवाद सूफी - धर्म इस्लामी कहलाता हैं। इस्लाम कट्टरवादियों के विरोध तथा धर्मान्धों की क्रूरता के कारण ईश्वराभिलाषी अनेक साधकों की मृत्यु हुई थी, अथवा उन्हें दण्ड सहन करना पड़ा था। फिर भी इस्लाम ने बहुत बड़ी संख्या में अनुभूति संपन्न ऋषियों को पैदा किया है जो आश्चर्य का विषय है। इनमें से कुछ ने उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं।

भारत में ही, विशेषकर हिन्दू धर्म में हम आध्यात्मिक स्वतंत्रता तथा अनुभूतियों का बाहुल्य पाते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार परमात्मा की अपरोक्षानुभूति मुक्ति के लिये अपरिहार्य है। हिन्दू धर्म में मुक्ति का अर्थ है दुख और अज्ञान से संपूर्ण छुटकारा! जब तक मानव मुक्ति नामक इस उच्चतम स्वतंत्रता को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे पुन: पुन: जन्म ग्रहण करना तथा जीवन के मीठे-कड़ुए फलों को चखना होगा। हिन्दू धर्म में आध्यात्मिक पूर्णता के विभिन्न मार्गों का गहराई से अध्ययन किया गया था तथा उनके एक विज्ञान का विकास हुआ था। उच्चतम अपरोक्षानुभूति के चार मार्ग हिन्दू धर्म में बताये गये हैं। ये योग कहलाते हैं। अब हम एक के बाद एक उनका संक्षेप में वर्णन करेंगे।

## कर्म योग

सर्वप्रथम है कर्मयोग। इसमें इच्छा को कर्म फल से पृथक करने को अधिक महत्व दिया गया है। इसे निष्काम कर्म कहा जाता है। यह इतना आसान नहीं है जितना कुछ लोग समझते हैं। इसके लिये महान इच्छा-शक्ति की आवश्यकता होती है। लेकिन अपने कर्मों के फलों से स्वयं को अलग करने का एक और आसान उपाय है। वह है, फलों को भगवान के चरणों में समर्पित करना। ईशावास्योपनिषद् की सर्वप्रथम अत्यन्त सुन्दर पक्ति तुम्हें याद होगी। ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। अर्थात् इस परिवर्तन-शील समग्र जगत् को ईश्वर द्वारा ढँक देना चाहिये। सारा संसार भगवान् का है यह जानकर सभी वासनाओं को त्याग देना चाहिये। कठिन विपदाओं और परीक्षाओं को सहन करते हुए बाईबिल के 'पुरातन व्यवस्थान' के जॉब नामक सन्त ने कहा था, "प्रभु ने दिया और प्रभु ने ही वापस ले लिया है, प्रभु के नाम की जय हो।" अनासक्ति और शरणागति के द्वारा जब मन शुद्ध होता है, तब अन्तरात्मा धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगती है।

## राजयोग

इसके बाद है ध्यान का मार्ग जो राजयोग कहलाता है। इसमें इन्द्रिय-विषय सम्बन्धी विचारों को मन में उठने न देकर मन को उच्चतर दिशा में प्रवाहित करने के लिये मुख्य रूप से प्रयत्न किया जाता है। अधिकांश लोगों के लिये यह बिलकुल असंभव कार्य है। बिना पूर्व तैयारी के इसका प्रयास करने पर तीव्र प्रतिक्रियाएँ हो सकती है। अतः इसके मुख्य प्रणेता, पतंजलि ने इसे एक क्रमबद्ध साधना का रूप दिया है। सर्वप्रथम हैं यम और नियम, अर्थात् सामान्य और विशेष नैतिक आचरण। व्यक्ति को सर्वदा अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय, या दूसरों पर निर्भर न होने का आचरण करना चाहिये। अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो। स्वच्छता और सन्तोष का अभ्यास करो। अध्ययन करो और गहन चिन्तन कर आदर्शों को आत्मसात् करो। गुरुओं के भी गुरु परमात्मा को सब कुछ समर्पित कर दो। इन सभी में सफलता प्राप्त करने पर आसन-विशेष में बैठने का तथा श्वास-प्रश्वास के नियंत्रण का अभ्यास किया जा सकता है। इसका अर्थ है देह और मन की प्राण-शक्ति के प्रवाह को नियंत्रित करना। यह प्राणायाम कहलाता है। कुछ लोग इसे अत्यधिक महत्व देते हैं, लेकिन वे प्रायः अपने भीतर क्रीड़ा कर रही शक्तियों को नियंत्रित करने में असमर्थ होते हैं। इसके परिणाम स्वरूप मस्तिष्क स्थायी अथवा अस्थायी रूप से विक्षिप्त-अस्थिर हो सकता है। पतंजलि ने अपनी साधना पद्धति में प्राणायाम को बहुत कम महत्व दिया है। राजयोग की अगली दो सीढ़ियाँ प्रत्याहार और धारणा, अर्थात् इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाना तथा मन को किसी आध्यात्मिक विषय में लगाना। इस आन्तरिक एकाग्रता के गहरे होने पर व्यक्ति स्वयं का पुरुष अथवा आत्मा के रूप में साक्षात्कार करता है।

## भक्तियोग

तीसरा मार्ग भक्तियोग है। इसमें भी अनुशासन की आवश्यकता है, लेकिन अपने मनोवेगों को भगवान की ओर मोड़ने को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। संसार के प्रति आसक्ति को भगवत् प्रेम में परिणत करना चाहिये। घृणा के बदले वैराग्य होना चाहिये। भय के स्थान पर भगवत्-शरणागति होनी चाहिये। इसके साथ ही, निरन्तर भगवत् स्मरण करते रहना चाहिये। इसके लिये भक्त शब्द प्रतीकों, तथा मंत्रों की

सहायता लेता है। मंत्र रहस्यमय छोटे शब्द समूह हैं। फिर इनसे लंबी स्तुतियाँ और भजन भी हैं। इनकी सहायता से भक्त को सदा भगवत्-स्मरण बनाये रखना चाहिये। तब भगवान् की कृपा से वह आध्यात्मिक जीवन को सारी बाधाओं को पारकर भगवान् का दर्शन प्राप्त करता है।

**ज्ञानयोग**

जब हम ज्ञानयोग पर आते हैं तो हम पाते हैं कि इसमें साधक के लिये आत्म साक्षात्कार या आत्मानुभूति नामक आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिये उच्चतर योग्यता, उच्चतर नैतिक स्तर की आवश्यकता होती है उसे संयत, असीम धैर्यवान, श्रद्धावान् तथा ध्यान परायण होना चाहिये। उसे नित्यानित्य विवेक में समर्थ होना चाहिये, तथा इस जन्म तथा पर जन्म में भोग की सभी इच्छाओं का त्याग कर देना चाहिये। और उसमें मुमुक्षुत्व अर्थात् सभी बन्धनों से मुक्त होने की तीव्र इच्छा होनी चाहिये। इन सभी सद्गुणों का होना सरल नहीं है।

ज्ञान का अर्थ पुस्तक का ज्ञान नहीं है। उपनिषदों में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख है। प्रथम है अपरा अथवा निम्न और दूसरी परा या उच्च। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष तथा अनुमान द्वारा प्राप्त विद्या अपराविद्या है। अध्ययन इसके अन्तर्गत आता है। चरम सत्य की अपरोक्षानुभूति परा विद्या है। ज्ञान योग का समग्र उद्देश्य इस अतिचेतनावस्था का साक्षात्कार करना है, न कि दार्शनिक विषयों पर सूक्ष्म तर्क-वितर्क में लगे रहना, जैसा कि प्रायः होता है।

ज्ञानयोग का प्रारंभ 'श्रवण' से होता है, जिसका अर्थ है आध्यात्मिक सत्यों को पढ़ना अथवा गुरु से सुनना। इन सत्यों को उपनिषदों के चार महावाक्यों के द्वारा सूत्ररूप में व्यक्त किया गया है। लेकिन केवल सुनकर ही नहीं रह जाना चाहिये। जो सुना है, उसपर तब तक गहराई से चिन्तन करना चाहिये जब तक सत्य के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति की संभावना के बारे में दृढ़ निश्चय न हो जावे। यह मनन कहलाता है। प्रायः लोग सामान्य विषयों पर भी इस तरह का मनन नहीं करते। मुझे एक कहानी याद आ गई। एक किशोर बालिका को भोज में जाने का निमंत्रण मिला। वह एक प्रसिद्ध खगोलशास्त्री के पास बैठी थी। उसके रौबदार चेहरे से लड़की कुछ आकृष्ट हुई और उसने उनसे पूछा, "आप क्या करते हैं?" उन्होंने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया, "मैं खगोलशास्त्र का अध्ययन करता हूँ।" लड़की को बड़ी निराशा हुई। उसने सोचा था कि सम्माननीय दीख रहे ये सज्जन इससे बेहतर उत्तर देंगे। उसने कहा, "क्या इस उम्र में आप अभी भी खगोलशास्त्र पढ़ रहे हैं?" मैंने पिछले वर्ष खगोलशास्त्र का अध्ययन पूरा कर लिया है।" खगोलशास्त्र के उसके ज्ञान का कुछ पुस्तकों को पढ़ने के साथ अन्त हो गया था। मनन के बाद है, निदिध्यासन। निदिध्यासन एक उच्च प्रकार का ध्यान है जिसमें आत्मा के स्वरूप का सीधा अनुसन्धान किया जाता है। वस्तुतः यह सत्य के लिये "नेति नेति" 'यह नहीं, यह नहीं' के मार्ग से एक गहन अनुसन्धान है।

**योग का लक्ष्य**

प्रत्येक मानव आत्मा परमात्मा का एक शाश्वत अंश है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं:

मुझ परमात्मा का ही एक सनातन अंश इस लोक में जीव बनकर मन तथा पाँच इन्द्रियों को आकर्षित करता है। यह जब जीव शरीर धारण करता है अथवा त्यागता, तब जिस प्रकार वायु

पुष्प से गन्ध लेकर जाता है, उसी तरह वह इनको लेकर जाता है।

(श्रीमद् भागवत् गीता—१५; ७, ८,)

जबतक अज्ञान है, जबतक वासना है, तबतक पुरुष को बारंबार जन्म और मृत्यु से गुजरना होगा। जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होते ही इस संसार चक्र का अन्त हो जाता है।

सभी योगों का लक्ष्य इस मिलन का सचेतन अनुभव बौद्धिक रूप से ही नहीं बल्कि एकत्व के साक्षात्कार के द्वारा करना है। ऐसा होने पर ही परम सत्य की उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति हमारे लिये यथार्थ हो सकेगी। मानव जीवन में सदा विद्यमान अज्ञान के कारण आत्मा अहंकार, मन और इन्द्रियों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। यदि यह अनुभव कर भी ले कि उसका वस्तविक स्वरूप मन और इन्द्रियों से भिन्न है तो भी उसके लिये अहंकार से छुटकारा पाना कठिन होता है। श्रीरामकृष्ण उसकी तुलना अश्वत्थ वृक्ष से किया करते थे। उस वृक्ष के काट देने पर भी अंकुर पुनः निकल आता है।

(श्रीरामकृष्ण वचनामृत)

मिथ्या अहं को शुद्ध करना है, तथा उसका आध्यात्मीकरण करना है। सभी योगों का यह मुख्य उद्देश्य है। कर्म योग कर्म के फलों को परमात्मा को समर्पित करना तथा सेवा द्वारा व्यक्तिगत इच्छा को भगवदिच्छा में विलीन करना सिखाता है। इसी तरह राजयोग में अपनी सभी साधनाओं को समर्पण और अतिचेतनता के भाव से करने का प्रयास बना रहता है और उसके जप और ध्यान द्वारा आन्तरिक भगवद् सान्निध्य के भाव को बनाये रखने पर बल दिया जाता है। भक्तियोग भगवान् के यन्त्र के रूप में सेवा और प्रेमपूर्ण भक्ति का भाव संचारित करता है। इस तरह किसी न किसी प्रकार से 'अहँ' का आध्यात्मीकरण किया जाता है। प्रारंभ में भगवान् को पिता या सखा मानने में कोई हानि नहीं है। लेकिन अपने पृथक व्यक्तित्व बोध के अनन्त-बोध में विलीन होने पर ही हमें अखंड-परमात्मा के आनन्द का अनुभव हो सकता है। ज्ञान योग का लक्ष्य आत्म-अनात्म विवेक तथा 'तत्व मस्यादि' औपनिषदिक महावाक्यों के अर्थ के चिन्तन से आत्मा और परमात्मा के एकत्व की अनुभूति करना है।

इन सभी योगों के मूल में तप समान रूप से विद्यमान है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण शरीर, मन और वाणी के तत्व का उल्लेख करते हैं (भगवद् गीता १७, १४-१६) शुचिता। स्वच्छता, ब्रह्मचर्य और आर्जव या ऋजुता शारीरिक तप कहे गये हैं। दूसरों को कष्ट न देने वाले, लेकिन सत्य और हितकर वचन बोलना तथा शास्त्रों का पाठ वाणी का तप कहलाता है। इस नियम को पालन करने पर हमें अपने बोलने के स्वभाव का निरीक्षण करना होगा तथा व्यर्थ तथा हानिकारक शब्दों को त्यागना होगा। सौम्यता, मौन, प्रशान्तता, इन्द्रिय-संयम, चित्त की शुद्धि ये मन के तप हैं। इन सभी साधनाओं का दृढ़ निष्ठा और तीव्रता से अभ्यास किया जाना चाहिये। इसके साथ दृष्टिकोण की उदारता भी होनी चाहिये। आध्यात्मिक जीवन में हमें श्रीकृष्णोपदिष्ट कर्म फल त्याग की, शंकराचार्य के आत्म-विश्लेषण के मार्ग की, चैतन्य के उन्मत्त-भगवद् प्रेम की प्रणाली की आवश्यकता है। हम बुद्ध के अष्टांग मार्ग से ईसामसीह के पर्वतीय उपदेश से, तथा मुहम्मद के विश्वजनीन भ्रातृत्व के सिद्धान्त से भी लाभ उठा सकते हैं। ये सभी आत्मा को उसके वास्तविक दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिये प्रस्तुत करते हैं तथा इन्हें सभी धर्मों के साधकों ऋषियों ने महत्व दिया है।

व्यष्टि जीव समष्टि से पृथक नहीं है। चित्त-शुद्धि से प्राप्त उच्चतर प्रज्ञा द्वारा यह सत्य प्रकट होता है। सभी योगों में साधना का जन्म प्रेम से होता है और परमात्मा के साथ एकत्व का बोध स्वाभाविक रूप से समस्त मानवता के साथ एकत्व की अनुभूति कराता है। भगवन्नाम के जप तथा सर्वान्तर्यामी परमात्मा के निरन्तर स्मरण से भक्त अपने जीवन को मधुमय बनाता है, अपने अहंकार को परमात्म-चैतन्य में लीन करना सीखता है। उसकी व्यष्टि चेतना विराट चैतन्य में उसी तरह विलीन हो जाती है, जिस तरह लहर सागर में लीन होती है। वह यह अनुभव करता है, "स्वरूपतः मैं ब्रह्म हूँ, मैं परमात्मा से भिन्न नहीं हूँ।" यह अनुभूति ही प्रत्येक यथार्थ ज्ञानी में पाये जाने वाले आनन्द का कारण है। अनन्त सत्ता के साथ अपने एकत्व की अनुभूति होने पर, जीव के आनन्दमय परमात्मा के साथ विलीन होने पर मानव समस्त मानवता के साथ इस एकत्व की अनुभूति करता है। समस्त प्राणियों के हृदय में प्रतिबिम्बित हो रहे भगवत्-प्रेम और भगवत्-कृपा की सभी कम से कम एक झलक तो पा ही सकते हैं। तब जीवन के प्रति असन्तोष का स्थान एक शान्त-भाव ले लेता है जो जीवन को पृथ्वी पर स्वर्ग बना देता है। आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ दुःख से हो सकता है, लेकिन आत्मा के एकत्व की वास्तविक सत्यता का अनुभव होने पर हम अंधकार में पड़े लोगों को प्रकाश प्रदान कर सकेंगे। अतः आध्यात्मिक अनुभूति अपने व्यक्तिगत सुख और शान्ति के लिये ही नहीं, बल्कि दूसरों के सुख और शान्ति के लिये भी आवश्यक है।

---

# श्रीमाँ सारदा संदेश-सुधा

- जीवन की समस्याओं को सुलझाने को सबसे सरल और अच्छी विधि ईश्वर या ठाकुर के नाम का मन में जप करना है।
- ठाकुर मुझसे कहा करते, "निरन्तर काम में लगे रहना चाहिए। बिना काम के किसी को नहीं रहना चाहिए। जब व्यक्ति आलसी होता है तो उसके मन में सब प्रकार के बुरे विचार घर कर लेते हैं।
- बेटा, पूजा या तपस्या आदि अभी से करना प्रारम्भ कर दो। क्या बाद में वह सब करना सम्भव होगा? तुम जो कुछ पाना चाहते हो, अभी प्राप्त करो। यही समय है।

# श्रीरामकृष्ण का अज्ञात पहलू

लेखक—स्वामी भजनानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ
अनुवादक : स्वामी उरुक्रमानन्द
अद्वैत आश्रम, कलकत्ता

## एक कालातीत स्तुति :

जब सूर्यदेवता पश्चिमी क्षितिज के उस पार डूबने लगते हैं, जब छायाएँ गहराकर आच्छन्न अंधियारे में विलीन होने लगती हैं, जब क्षितिज से होकर गाम्भीर्य की एक चादर संध्याबेला के इस संसार पर पसरने लगती है, तब आश्रमों तथा हजारों घरों में एक सादगीभरी पूजा उस परम पुरुष की स्तुति में सम्पन्न की जाती है, जिसे जगत् श्रीरामकृष्ण के नाम से जानता है। उनकी अदृष्ट उपस्थिति के आभास हेतु किसी विशेष कमरे में या उसके कोने में अगरबत्ती जलाकर दीपों से आरती उतारी जाती है तथा प्रायः सम्मिलित रूप से उनकी स्तुति में आग्रहपूर्वक गीत एवं भजन गाए जाते हैं।

धार्मिक अनुष्ठान एक पवित्र संस्कार होता है। उसके पार्श्व में एक ऐसा दृढ़ आधार होता है जिसकी शक्ति युगों तक विद्यमान रहा करती है। इन धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा भक्तों के मन में विगत घटनाओं की पुनस्मृति जागृत होती है तथा वे अलौकिक तथ्यों की साक्षात् उपलब्धि करते हैं, तो मानो वह स्थान आध्यात्मिक दृष्टि से दक्षिणेश्वर का उद्यान-मन्दिर ही बन जाता है। समय मानो स्तब्ध हो जाता है और भक्तों का ऐसा विश्वास है कि जब श्रीरामकृष्ण उनकी पूजा को नित्य स्वीकार करते हैं तो वह इतिहास का अतिक्रमण कर जाती है, उस समय केवल शाश्वत वर्तमान ही विद्यमान रहता है। धार्मिक अनुष्ठान के द्वारा श्रद्धा का ऐसा ही चमत्कार देखा जाता है। यद्यपि अनुष्ठान मानवात्मा की कालविहीन स्तुति में एक क्षणिक अभिव्यक्ति है। जन्म-जन्मान्तरों के दिग्भ्रमित युगों से मानव उस दिव्यता की किसी-न-किसी रूप-आकार में स्तुति करता आ रहा है। मानवात्मा को अनन्तकाल से इस प्रकार स्तुति करने के परिणामस्वरूप ही उस दिव्य सत्ता को वारम्वार इस धराधाम पर अवतार के रूप में अवतीर्ण होना पड़ता है। ईश्वर-बुभुक्षु आत्मा इन अभिव्यक्तियों को ग्रहण करती है तथा स्वयं के जीवन में उन्नति पाने के लिए उनके नये अर्थ तथा दिशा निर्धारित करती है।

अवतार द्वारा उच्चरित प्रत्येक शब्द ज्योति का सन्देश लाता है, प्रत्येक हरकत आशा की किरण जगाता है, उनका प्रत्येक कर्म एक संस्कार होता है तथा जिस भी स्थान से वे गुजरते हैं वह एक पवित्र तीर्थस्थल ही बन जाता है। पूर्व के सभी अवतारों जैसे—राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा मसीह के सम्बन्ध में ये बातें सत्य साबित हुई हैं तथा उसी तरह वर्तमान समय में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में भी वह सत्य सिद्ध हुई हैं।

## कस्मै देवाय हविषा विधेम :

ये श्रीरामकृष्ण भला कौन हैं जिन्हें आज हजारों लोग आराध्य मानते हैं ? ये श्रीरामकृष्ण कौन हैं जिनका अमर व्यक्तित्व आज सारी दुनिया के अगणित लोगों के जीवन एवं भाग्य से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है ? यदि यह प्रश्न उनके भक्तों और समर्थकों से किया जाय तो बड़ी संख्या में वे

उलझन में पड़ सकते हैं, जबकि जो लोग इसका उत्तर देने का प्रयास करेंगे वे भी तत्काल पाएँगे कि उनके विषय में अपने गम्भीरतम विश्वास को सुस्पष्ट अभिव्यक्ति देने में वे असमर्थ हैं। ऐसा कहा जाता है कि एक बार गिरीशचन्द्र घोष ने स्वामी विवेकानन्द से श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखने का अनुरोध किया था, तब महान् स्वामी जी ने तुरन्त संकोचपूर्वक कहा, "मुझसे समुद्र को सुखाने के लिए कहो, तो मैं वह कर दूँगा, मुझसे पर्वतों को चूर-चूर कर देने के लिए कहो, तो वह कर दूँगा; परन्तु कृपया-मुझसे श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखने का आग्रह मत करो।"

जब स्वामी विवेकानन्द जैसे उत्कृष्ट व्यक्तित्व ने भी अपने गुरुदेव के चरित्र को समझने के विषय में संकोच जाहिर किया है, तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि श्रीरामकृष्ण के साधारण भक्तगण उनके सच्चे स्वरूप को समझने में स्वयं को असमर्थ पाते हों। परन्तु सत्य तो यह है कि बहुधा भक्तों द्वारा श्रीरामकृष्ण को स्वीकारना उनकी विपुल तर्कशक्ति अथवा गम्भीर चिन्तन का परिणाम भी नहीं होता। अनेकों के लिए तो यह श्रीरामकृष्ण का उनके हृदयों पर दिव्य अतिक्रमण ही कहा जा सकता है, यद्यपि कारण के रूप में वे कह सकते हैं कि उन्होंने कोई किताब पढ़ी हो, या कोई वक्तृता सुनी हो अथवा सहज ही किसी आश्रम में गये हों। और जब ऐसा हो जाता है, तो वे इस दिव्य व्यक्तित्व को स्वीकार करने तथा उनकी पूजा करने के लिए एक प्रबल आकर्षण का अनुभव करते हैं, जबकि वे उन्हें पूरी तरह समझ भी नहीं पाए होते हैं।

यद्यपि अनजाने ही स्वीकारे गये एक आध्यात्मिक आदर्श में उतना सामर्थ्य नहीं होता जिसके फलस्वरूप एक जिज्ञासु अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ सके। ईश्वर पर श्रद्धा वह अमूल्य निधि है जिसे मन के अन्धकारमय प्रकोष्ठ में ही छिपा रहने नहीं दिया जाना चाहिए। श्रद्धा अनुभव के द्वारा प्रकाशित होनी चाहिए तथा भक्ति सज्ञान एक आत्मनिर्दिष्ट प्रक्रिया होनी चाहिए।

प्राचीन वैदिक आर्य लोग अनेकों देवताओं की उपासना किया करते थे। उनमें से जिज्ञासु मस्तिष्कवालों ने स्वयं से ही प्रश्न करना शुरू किया, "वह कौन-सा देवता है जो हमारी आहुतियों को ग्रहण करता है?" इस तरह के प्रश्नों ने उन्हें इस दृश्यमान जगत् के पार्श्व में विद्यमान वास्तविक सत्ता के स्वरूप की जानकारी लेने हेतु अनुसन्धान करने को प्रेरित किया तथा हम देखते ही हैं कि कैसे यह अनुसन्धान परम सत्य के रूप में ब्रह्म तक पहुँचने में समर्थ हुआ। श्रीरामकृष्ण के भक्तगण अथवा इस सन्दर्भ में कोई भी मानवीय ईश्वर या अवतार के भक्त अपने उपास्य देव को इसी तरह सर्वव्यापी होते देखेंगे यदि वे इसका अनुसन्धान करें।

### मेरे विषय में तुम क्या सोचते हो ? :

अपने जीवन-काल में अपने भक्तों से श्रीरामकृष्ण को स्वयं इस तरह की जिज्ञासा को प्रोत्साहन देते हुए पाया गया था। कभी-कभी वे उनसे पूछा किया करते थे कि वे लोग उनके विषय में क्या सोचते हैं? उदाहरणस्वरूप, हम श्रीरामकृष्ण वचनामृत में पाते हैं कि इस पुस्तक के लेखक श्री 'म' जब चौथी बार उनसे मिलने गये थे, तब श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा, "अच्छा, तुमसे एक बात पूछता हूँ—मुझे तुम क्या समझते हो? तुम्हें क्या मालूम होता है? मुझे कितने आने ज्ञान हुआ है?"*

*(श्री म—श्रीरामकृष्ण वचनामृत श्रीरामकृष्ण मठ, नागपुर १९९५ (इसके बाद से वचनामृत), भाग १, पृ० ३४)

इस प्रश्न के पूछने में उनका दोहरा उद्देश्य निहित था। प्रथमतः, वे जो उत्तर पाते इससे उन्हें शिष्य की मानसिक गढ़न की जानकारी हो जाती और वे शिष्य के विश्वास करने के ढंग को जान जाते। द्वितीयतः, प्रश्न इतना नपा-तुला था कि वह शिष्य के मन में अपने उपास्य को समझने को प्रेरित कर देता, और इस तरह उन दोनों का सम्बन्ध सदा एक नवीनता लिए हुए तथा सजीव बना रहता। सच्चा प्रेमी कभी भी स्थिर, प्रतिबन्धित तथा नीरस नहीं बनता। वह सदा ही एक स्फूर्त एव सजीव अनुभव हुआ करता है जिसमें सारा व्यक्तित्व ही संलग्न रहता है। यह तभी संभव होता है जब उस प्रेम को ठीक-ठीक समझ का आधार रहता है तथा प्रेमी अपने प्रियतम को सतत एक जीवन्त इकाई के रूप में देखता है।

बहुतायत में लोग सत्य से विमुख हो जाते हैं क्योंकि वह अपने आपको जीवन की धारा में वह जाने देते हैं। इसके विपरीत, एक सच्चा आध्यात्मिक पुरुष, जीवन के हर क्षण सत्य का सामना करता है। भक्त लोग अधिकतर अपने और अपने उपास्य देव के बीच सम्बन्धों को बड़ी सहजता से लेने का खतरा मोल लेते हैं। उन्हें इस विचार से बड़ा सन्तोष रहता है कि उन्हें उपास्य देव के प्रति पर्याप्त भक्तिभाव अथवा प्रेम है। उसी तरह, ध्यान भी यह समझ कर किया जाता है कि ध्यान का विषय उन्हें ज्ञात ही है। वे उन पर ध्यान ही भला क्योंकर करें? अज्ञान से उपजा यह अनुमान सत्यानुसन्धान करने की पहल को ही नष्ट कर देता है तथा प्रगति का मार्ग रुद्ध हो जाता है। इसीलिए उपनिषद शिक्षा देते हैं:

**यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।**
**अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥** (तैत्तरीय उपनिषद्, २.७.१.)

—'जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जानने में नहीं आता; उसका तो वह जाना हुआ है; और जिसका यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है; वह नहीं जानता क्योंकि जानने का अभिमान रखनेवालों के लिए वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ नहीं है, और जिनमें ज्ञातापन का अभिमान नहीं है, उनका वह ब्रह्मत्त्व जाना हुआ है अर्थात् उनके लिए वह अपरोक्ष है।'

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—"यहाँ जो भक्त आते हैं, उनके दो दर्जे हैं। जो एक दर्जे के हैं, वे कहते हैं, 'हे ईश्वर, हमारा उद्धार करो। दूसरे दर्जेवाले अन्तरंग हैं, वे यह बात नहीं कहते। दो बातें जानने से ही उनकी बात बन जाती है। एक तो यह कि मैं (श्रीरामकृष्ण) कौन हूँ, दूसरी यह कि वे कौन हैं—मुझसे उनका क्या सम्बन्ध है।" ×

यह एक महत्वपूर्ण वक्तव्य है जो स्वामी विवेकानन्द की सत्य धर्मविषयक परिभाषा 'नित्य आत्मा और परमात्मा के सनातन सम्बन्ध' से मेल खाती है। भक्त और उसके उपास्य देव के मध्य सम्बन्ध तभी शाश्वत हो सकता है जब वह उपासक और उपास्य के असली स्वरूप के सच्चे ज्ञान पर अवलम्बित हो।

## रहस्य का प्रभामण्डल :

हम श्रीरामकृष्ण के भक्त के रूप में उपरोक्त कथन के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठाते हैं: श्रीरामकृष्ण कौन हैं? जब हम इस तरह का अन्वेषण करने हेतु अग्रसर होते हैं, तो एक आश्चर्यकारी खोज कर पाते हैं कि श्रीरामकृष्ण के संक्षिप्त जीवन-काल के अन्तर्गत उनके कुछ बाह्य क्रिया-

---

× (वचनामृत भाग २, पृ० १६८)

कलापों के अतिरिक्त वे बहुतायत में अनजाने ही रह जाते हैं। इस धराधाम में जिन्होंने वास किया उन श्रीरामकृष्ण नाम के परम पुरुष को हम सचमुच ही नहीं जानते। इस जगत् में उनके जीवन विषयक ज्ञात तथ्यों का विश्लेषण करने पर भी प्रत्येक कदम पर हम अपने आपको एक रहस्य के सम्मुख खडा पाते हैं।

उनके जन्म के समय से ही श्रीरामकृष्ण के जीवन के चारों ओर एक रहस्यमय प्रभामण्डल मंडराया करता है। उनके जीवनीकारों के अनुसार, उनके जन्म के पूर्व गया में उनके पिता को स्वप्न में भगवान विष्णु ने दर्शन देकर कहा था कि शीघ्र ही वे उनके घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण करेंगे। उधर सुदूर ग्राम कामारपुकुर में उनकी श्रद्धेय माता जी को एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ। एक दिन जब वे शिव मन्दिर के सामने खड़ी थीं, उन्होंने देखा कि शिवमूर्ति से एक दिव्य प्रकाश निःसृत होकर उनके शरीर में समा गया है तथा शीघ्र ही उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वे गर्भवती हो गयी हैं। अब, यहाँ एक रुचिकर प्रश्न उपस्थित होता है, वास्तव में श्रीरामकृष्ण किसकी अभिव्यक्ति थे—विष्णु की अथवा शिव की, या माता के गर्भ में ही क्या उन्होंने धार्मिक समन्वय आरम्भ कर दिया था? इस अद्भुत तथ्य को उजागर करने का प्रयास श्रीरामकृष्ण की जीवनी के आधिकारिक चरित-लेखकों ने नहीं किया है।

उनका बाल्यकाल रहस्यमय अनुभवों एवं घटनाओं से भरा पड़ा है। यथार्थतः उनका पूरा यौवन आध्यात्मिक साधनाओं में ही बीता जिसकी तीव्रता, विस्तार तथा विविधता की तुलना सन्तचरितों के इतिहास में कहीं पायी नहीं जाती। जो लोग उन्हें शिक्षा देने आए वे उनके समक्ष श्रद्धा से अवगत हुए। जिस महिमामयी दिव्यता को वे अपने से निःसृत करते थे वह तत्कालीन विद्वानों के लिए पेटेण्ट बन गयी थी जो खुले तौर पर उन्हें ईश्वरावतार घोषित करते थे। उन्होंने दुर्दमनीय शक्ति से अपने भक्त एवं शिष्यों को अपनी ओर आकर्षित किया तथा उनके समक्ष हर एक को भिन्न-भिन्न ढंग से स्वयं को उद्घाटित किया। उनके संरक्षक श्री मथुरबाबू ने उनमें शिव और काली को देखा। उनको गुरु भैरवी ब्राह्मणी तथा कतिपय गृही शिष्यों के लिए वे श्रीगौरांग थे। गोपाल की माँ के नाम से जानी जानेवाली महान् भक्तमहिला के लिए वे श्रीकृष्ण थे। स्वामी विवेकानन्द ने उनमें अपने महत्तम आदर्शों को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त होते देखा था। एक बार के अपने अनुभवों में उन्होंने श्रीरामकृष्ण को गोपी राधा होते देखा था और इसने उनके जीवन को गम्भीर रूप से प्रभावित किया था। पुरी में जगन्नाथ के पावन मन्दिर में स्वामी तुरीयानन्द ने श्रीरामकृष्ण को वहाँ के आराध्य देव के रूप में देखा था। स्वामी शिवानन्द ने बनारस के अपने दर्शन में उन्हें शिव के रूप में निहारा। स्वामी अभेदानन्द ने अपने आश्चर्यकारी आध्यात्मिक दर्शन में देखा था कि सभी महान् अवतारी पुरुष तथा देवी-देवता श्रीरामकृष्ण में विलीन हो गये हैं।

श्रीरामकृष्ण की इस तरह से विभिन्न दिव्य रूपों में अपने आपको अभिव्यक्त करने की यह विलक्षण क्षमता उन्हें जगत् के महान् अवतारों और पैगम्बरों से विलग कर देती है। परन्तु इससे रहस्य और भी गहरा जाता है जो उनके असली स्वरूप को ढँक लेता है तथा ज्ञात धार्मिक विश्वासों के आधार पर हमें श्रीरामकृष्ण की श्रेणी-निर्धारण में बाधा उत्पन्न करता है।

लौकिक और अलौकिक पक्ष :

आज श्रीरामकृष्ण को न केवल उनके अनुयायी ही ईश्वरावतार के रूप में स्वीकार नहीं कर रहे हैं, अपितु सारे विश्व के विभिन्न भागों के अनेक लोग जिनमें उन व्यक्तियों की गणना की जा

सकती है जो उत्कृष्ट विचारक तथा ख्यातिप्राप्त हैं। श्रीरामकृष्ण के इस पक्ष का वर्णन करने में आजकल उनके चरित-लेखक अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा कम संकोच एवं खेद का अनुभव कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण का जीवन तथा उनके अनुभव अत्यन्त विलक्षण हैं तथा साधारण सन्तचरित की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं। इस तथ्य से सभी अवगत हैं ही जिन्होंने उनका जीवन-चरित पढ़ा है। मुख्य समस्या उन्हें ईश्वरावतार घोषित करने की नहीं है, बल्कि उसका ठीक-ठीक अर्थ समझने की है। और हम यहीं अज्ञात श्रीरामकृष्ण के सम्मुख होते हैं क्योंकि अवतार अपना रहस्य इतनी आसानी से समझने नहीं दिया करते।

श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं सन्देश तथा उनको ठीक-ठीक समझने के लिए हमें इस बात का आधार लेना ही होगा कि अवतारवाद रहस्यमय हुआ करता है। श्रीरामकृष्ण के सच्चे स्वरूप को जो रहस्य घेरे रहता है, वह अन्ततः अवतारवाद के रहस्य से ही आबद्ध है।

अवतार का मुख्य कार्य मानवता को मुक्ति प्रदान करना होता है। हालांकि, मुक्ति शब्द यहाँ ईसाइयों के संकीर्ण दृष्टिकोण मूल पाप से मुक्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहाँ इसका प्रयोग अलौकिक पुरुष को वह अतिमानवी क्षमता को दर्शाने में हुआ है जिसके तहत वे हजारों आत्माओं में आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान का संचार कर उनके बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं तथा उन्हें उच्चतर अवस्था में आरुढ़ कर देते हैं जहाँ वे परमानन्द और परम शान्ति का अनुभव करते हैं। अधिकतर साधारण जन इस चरमावस्था कर स्व-प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं। अवतार महान् आध्यात्मिक शक्ति की खान होते हैं तथा वे स्वयं को केन्द्रित कर एक आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न क्षेत्र का निर्माण करते हैं। अवतार के इस अत्यन्त शक्तिशाली शक्तिकेन्द्र की ओर जो भी आकर्षित होता है वह तत्काल ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। निश्चित तौर पर स्वामी विवेकानन्द ने इस तरह अवतारवाद तथा कृपा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। (विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, भाग ६, पृ० २१०)*

अवतार अपना जगद्द्धार का बृहत्तम कार्य बाह्य भौतिक ढाँचे से अपने को विलग करके सम्पन्न करते हैं। सारी मानवजाति को एक पूजनीय मानवाकृति प्रस्तुत करने हेतु ही वे स्वयं को आबद्ध कर रखते हैं। जीवन में एक नये आदर्श को दर्शाने में, लोगों की समकालीन आवश्यकताओं तथा प्रकृति के अनुकूल आशा के एक नये सन्देश देने हेतु ही वे मानव-शरीर धारण करते हैं। किन्तु इन सबका चाहे वे कितने ही आवश्यक क्यों न हों, एक सीमित मूल्य हुआ करता है। ये पीड़ित नर-नारियों को निरर्थक सांसारिक कर्मों से विरत तथा एक निश्चित आध्यात्मिक केन्द्र की ओर आकर्षित करते हैं। अवतार का असली कार्य तब आरम्भ होता है जब लोग उनके प्रभाव के दायरे में आते हैं। अवतार का जागतिक जीवन मील का वह पत्थर है जो उनको इन्द्रियातीय अवस्था का परिचायक होता है।

यही बात श्रीरामकृष्ण समझाते हैं जब वे कहते हैं कि अवतार दीवार का वह छिद्र है जिसके द्वारा उस ओर देखा जा सकता है। ऐसे दर्शन का पाना अन्यथा सम्भव नहीं होता।

किसी अवतारी पुरुष को केवल उसके जागतिक जीवन एवं क्रियाकलापों द्वारा परखना तथा उनकी ज्ञानातीत अवस्था को अस्वीकार करना ऐसा ही है मानो मुख्य द्वार को भवन समझने की भूल

---

* (विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, भाग ६, पृ० २१०)

करना। यही भूल प्रोटेस्टेण्ट धर्मविज्ञानी ईसा मसीह के जीवन के सम्बन्ध में करते आए हैं। ईसा मसीह को ऐतिहासिकता को उन्होंने अत्यधिक महत्व दिया है तथा उनके जागतिक जीवन की कतिपय घटनाओं तक ही उन्हें सीमित रखा है। कुछ आधुनिक प्रोटेस्टेण्ट धर्मविज्ञानियों ने उनके रहस्यमय दर्शनों तथा गूढ़ आध्यात्मिकता से उन्हें वंचित रखा है।

अवतार का ऐतिहासिक पहलू तो उनकी सनातन आध्यात्मिक शाश्वतता का केवल जागतिक आयाम मात्र होता है। इस धराधाम पर उनका मिशन तो उनकी अतीन्द्रिय शक्ति तथा उद्देश्य से उत्पन्न अधिकार एवं महत्व में निहित होता है। जब हम श्रीरामकृष्ण के जीवन और उनके ध्येय का अध्ययन करें तो इस मुद्दे को नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए।

'काम और कांचन' का उनका चरम त्याग, उनके अतिमानवी आध्यात्मिक संघर्ष तथा अनुभव, उनके सन्देश की गहराई और सर्वव्यापकता—निस्सन्देह सब अत्यन्त विलक्षण तथा भव्य हैं। परन्तु वे सब तो उनकी अलौकिक गरिमा को ही प्रदर्शित करते हैं जो हमारे इन चर्मचक्षुओं से छिपे रहते हैं। प्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त' में जो कहा गया है, वह इस सन्दर्भ में भी लागू होता है, हालांकि कुछ सीमित अर्थों में :

**एतावानस्य महिमा ज्यायागश्च पूरुषः।**
**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। ऋग्वेद, १० . ९० . ३**

(ये सब (सृष्ट विश्व) उस पुरुष का केवल एक चौथाई भाग की ही गरिमा को अभिव्यक्त करता है; शेष तीन चौथाई तो शाश्वत अलौकिक लोकों में ही निहित रहता है।)

अनन्त आध्यात्मिक भावों के मूर्तरूप :

अवतार को समझने के लिए मानवजाति को सदियाँ लग जाती हैं। युगों से लाखों लोग भगवान बुद्ध और ईसा मसीह के जीवन एवं शिक्षाओं से प्रेरणा पा रहे हैं तथा सहस्रों पुस्तकें उन पर लिखी गई हैं। तथापि नित्य नये अध्याय की प्रेरणा का क्रम जारी रहेगा तथा इन महाचार्यों की समकालीन उपयुक्तता और महत्व के नये आलोक को दर्शाने हेतु नवीन पुस्तकें निकल रही हैं। एक दिन जब श्रीरामकृष्ण के एक अन्तरंग शिष्य ने स्वामी विवेकानन्द से शिकायत भरे लहजे में कहा कि : उनके प्रचार करने का तथा सामाजिक सेवा करने का ढंग पश्चिमी तौर-तरीकोंवाला है तथा श्रीरामकृष्ण की शिक्षाओं से संगति नहीं रखता तो स्वामीजी ने बड़े ही आवेगपूर्ण होकर कहा, "वास्तव में श्रीरामकृष्ण उससे कहीं अधिक महान् हैं जितना कि उनके शिष्य उन्हें समझ पाए हैं। वे अनन्त आध्यात्मिक भावों के मूर्तविग्रह हैं तथा अनन्त प्रकार से प्रगतिशील हैं। हो सकता है कोई ब्रह्म के ज्ञान की सीमा पा सकता है, परन्तु कोई भी अपने गुरुदेव के अथाह मन की टाह नहीं पा सकता।*

अवतार के रहस्य का उजागर होने में सदियों का समय लग जाता है जो कि स्वयं 'अनन्त आध्यात्मिक भावों के मूर्त विग्रह' होते हैं। अनेकों संस्थानों और धार्मिक परम्पराओं के मार्फत, साधु-सन्तों, कलाकारों, विचारकों, दार्शनिकों, सामाजिक नेताओं के रचनात्मक मस्तिष्कों द्वारा अवतार के भाव दीर्घ काल तक अभिव्यक्त हुआ करते हैं। ये भाव त्रस्त मानवता को तब तक प्रेरणा प्रदान करते हैं, ढाढस बँधाते हैं तथा मार्गदर्शन करते हैं जब तक वे मानव जाति को अमृत के द्वार तक सुरक्षित पहुँचा नहीं देते। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि श्रीरामकृष्ण के जीवन तथा मिशन की तो अभी मात्र शुरूआत ही हुई है।

( शेष पृष्ठ ३१ पर )

# 'मानस' के आदर्शों का व्यावहारिक पक्ष

ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द

गोस्वामी तुलसीदास विरचित 'रामचरितमानस' एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें मानव-जीवन की सभी विधाएँ, उसके सारे आदर्श कुशल पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किये गये हैं। 'मानस' का मूल स्वर है—भगवान् राम की प्राप्ति और उनकी यह प्राप्ति उनके प्रति अनुराग के बिना सम्भव नहीं। 'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग जप जाग विरागा।' अतएव 'मानस' का ताना-बाना इस प्रकार बुना गया है कि श्रीराम की लीलाओं में मन लगे और इस तरह उनके प्रति अनुराग जागे। 'मानस' का कथानक इसी दृष्टिकोण से लिखा गया है कि दशरथनन्दन श्रीराम अपने अनुपम व्यक्तित्व के कारण भक्तों के 'भव-भीरहारी' भगवान बन जायँ। यही कारण है कि तुलसी के राम मात्र इतिहास-पुरुष नहीं हैं, वे भावपुरुष भी हैं, तुलसी की दृष्टि मात्र ऐतिहासिक न होकर भावात्मक अधिक हैं। या यों कह लें कि तुलसी केवल भावनेत्रों से ही अपने राम को देखना पसन्द करते हैं। और भाव की यह विशेषता होती है कि वह इतिहास के तंग दायरों को ढहा देता है। यदि श्रीराम मात्र ऐतिहासिक पुरुष होते, तो उनका जन्म आज से कुछ सहस्र वर्ष पूर्व अयोध्या नामक स्थान में दशरथ-कौशल्या के पुत्र के रूप में ही माना जाता, और यह भी स्वीकार किया जाता कि एक दिन उनकी मृत्यु हुई थी। इसका तात्पर्य यह होता कि श्रीराम इतिहास के देश-कालात्मक दायरों से कभी मुक्त न हो पाते। यह तो भाव की विशेषता होती है; जो अपने विशेष्य को देश और काल की सारी सीमाओं से परे करा देती है। तुलसी का भावात्मक दृष्टिकोण राम को सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वजनीन बना देता है। तुलसी के ये राम कहीं भी और किसी भी क्षण अवतरित हो सकते हैं। यदि भक्त अपने हृदय को अयोध्याधाम बना लें, तो 'अवध तहाँ जहँ रामनिवासू' के अनुसार श्रीराम वहीं और उसी क्षण प्रकट हो जाते हैं। यह भावदृष्टि की विशेषता है। इसीलिए 'मानस' के राम का न तो जन्म होता है, न मरण। उनका मात्र प्राकट्य होता है, जैसा तुलसी स्वयं कहते हैं —

'जगनिवास प्रभु प्रकटे अखिल लोक विश्राम'।

पर जब भगवान नररूप धारण कर लीला करते हैं, तो कुछ बातें ऐसी भी दिखती हैं, जो सामान्य दृष्टि में खटकती हैं। मनुष्य अपने तर्क और विचारों से उन बातों का समाधान प्राप्त न कर सकने के कारण सन्देह की स्थिति में पड़ जाता है। मानस के राम की जीवनलीला इसका अपवाद नहीं है। श्रीराम एक पुत्र, भाई, पति, सखा, शरणागतवत्सल और राजा के रूप में जिन अनुपम आदर्शों की स्थापना करते हैं, उसमें किसी प्रकार का विवाद या सन्देह नहीं हो सकता। धर्मस्थ तथा ऐसे ही अन्य प्रसंगों के माध्यम से 'मानस' ने आध्यात्मिक जीवन के निर्माणार्थ जो मौलिक सूत्र रचे हैं, उन पर भी किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इनकी उपदेयता सार्वभौम और निस्सन्दिग्ध है। पर ऐसी भी कुछ

बातें हैं, जहाँ मनुष्य तुलसी पर शंका करने लगता है। उदाहरणार्थ, वह बालि-बध और शूर्पणखा-विरूपकरण के औचित्य को नहीं समझ सकता। वह प्रश्न करता है कि आखिर तुलसी ने ढोल गँवार सूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी एवं पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन-गन ग्यान प्रवीना—ऐसी चौपाइयों के माध्यम से किन आदर्शों की स्थापना करनी चाही है? क्या 'मानस' वर्ग भेद का पृष्टपोषक है? क्या वह शूद्र-निन्दक है? हमारा प्रयास इन्हीं कुछ शंकाओं के उत्तर तक सीमित रहेगा।

पहले बालि-बध का प्रसंग लें। राम छिपकर वालि पर बाण चलाकर उसे मारते हैं। जब बालि उनके 'समदरसी' होते हुए भी 'पक्षपात' करने का दोष उन पर लगाता है, तो श्रीराम अपने कार्य को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए कहते हैं—तुमने अनुज-बधू को बलपूर्वक अपने पास रख लिया है, इसलिए 'शठ' हो, अध-कर्मी हो, अतएव बध्य हो। अनुज-बधू, भगिनी, सुत-नारी, यानि बहू और कन्या—इन चारों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। इनको जो कुदृष्टि से देखता है, 'ताहि वधे कछु पाप न होई।' यहाँ पर आपेक्ष किया जा सकता है कि राम का उत्तर समाधानकारक नहीं है, क्योंकि जब बालि-बध के पश्चात् सुग्रीव ने उनकी पत्नी तारा का ग्रहण किया तथा रावण-वध के बाद विभीषण ने मन्दोदरी का, तब तो राम कुछ नहीं बोले। इसका उत्तर यह है कि राम जानते थे कि अनार्य-परम्परा में बड़े भाई की पत्नी से विवाह करना संगत है, पर छोटे भाई की पत्नी का ग्रहण जघन्य और अक्षम्य अपराध है। आज भी ऐसी कई जातियाँ हैं, जहाँ यह प्रथा विद्यमान है। अतः उपर्युक्त आक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। फिर, भले ही राम उक्त प्रथा को अनार्य-जाति के सन्दर्भ में मान्यता देते हों, पर वे भी उसे पसन्द नहीं करते। उनकी यह बात प्रकट हो ही जाती है—जेहि अघ बधे व्याध इव बाली। पुनि सुकंठ सोई कीन्ह कुचाली—वे बालि के कृत्य को 'अघ' की संज्ञा देते हैं और सुग्रीव के कृत्य को 'कुचाल' की। विभीषण के सन्दर्भ में भी 'मानस' ने कहा—सोइ करतूति विभीसन केरी, सपनेहु सो न राम हिय हेरी। पर राम इसे क्षम्य अपराध मानते हैं। क्यों? इसलिए कि रहति न प्रभु चित चूक किये की, करत सुरति सय बार हिये की।—यानी, विभीषण और सुग्रीव में 'हिये' की भावना शुद्ध थी, इसलिए उनका कुचाल क्षम्य और उपेक्षित हुआ।

फिर यदि राजनीति का दृष्टिकोण अपनाया जाय, तो भी राम निर्दोष साबित होते हैं। यदि आमने-सामने युद्ध की बात होती, तब तो अंगद आदि वीरों को भी सामने आना पड़ता और बहुत से योद्धा, खर-दूषण की सेना के समान, खेत हो रहते। इससे राम जिस सहायता की अपेक्षा सुग्रीव से रखते थे, वह पूरी नहीं हो पाती और व्यर्थ की खून-खराबी हाथ लगती। केवल बालि का बध करके उन्होंने ऐसा अहंकार रोक लिया और बालि-तनय अंगद को अपना विश्वासपात्र बना लिया। इससे राम का अपना ही लाभ हुआ।

दूसरा प्रसंग है—शूर्पणखा-विरूपकरण का। नारी के प्रति ऐसा अत्याचार अशोभन मालूम पड़ता है। पर यहाँ हम भूल जाते हैं कि शूर्पणखा का विरूपकरण तब तक नहीं किया गया, जब तक वह आततायी का रूप धारण नहीं करती। वह दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी तो थी, पर इस कारण उसे दण्ड नहीं दिया गया। जब वह रूप भयंकर प्रगटत भई, तभी दण्डनीय बनी। आततायी तो बध्य हुआ करता है। पर राम अपनी ही करुणा से उसे जीवनदान देते हैं—केवल उसका

जो रूप-मद समाज के लिए नैतिकता का राहु बना हुआ था, उसी को नष्ट करने के लिए राम इशारा करते हैं।

यहाँ एक दोष राम पर यह लगाया जा सकता है कि उन्होंने– अहइ कुमार मोर लघु भ्राता— कहकर शूर्पणखा से असत्य भाषण क्यों किया? इसका सहज समाधान यह है कि राम पूरी तरह से मानव थे, वे मानवी स्वभाव से युक्त थे, उन्हें भी हास-परिहास प्रिय था। अतः यदि मायाविनी शूर्पणखा के सामने उन्होंने विनोद में यह कहा कि लक्ष्मण कुमार है, तो यह रामचरित्र पर कटाक्ष का कारण नहीं हो सकता, बल्कि वह तो उनके मानवी भाव के माधुर्य को और बढ़ा देता है। फिर, शूर्पणखा विवाहिता होती हुई भी अपना परिचय कुमारी के रूप में देती है। श्रीराम उसी को भाषा का उपयोग करते है, उनका मन्तव्य यह है कि जिस अर्थ में तुम कुमारी हो, उसी अर्थ में लक्ष्मण भी कुमार हैं।

तीसरा आक्षेप मानसकार पर यह लगाया जाता है कि वे नारी-निन्दक थे, इसीलिए उन्होंने नारी को 'ताड़न के अधिकारी' माना। इसका समाधान तो मात्र इतने से हो जाता है कि हम इस चौपाई को सन्दर्भित प्रसंग के साथ ही पढ़ें। किसी बात को सन्दर्भ से अलग हटाकर रखने से अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है। राम समुद्र से रास्ता माँगते हैं। वह नहीं देता। राम तब क्रुद्ध हो समुद्र के प्रति शठ, कुटिल, कृपण, ममतारत, अतिलोभी, क्रोधी, कामी और ऊसर विशेषण लगाते हुए उस पर बाण का सन्धान करते हैं। इस पर समुद्र भयाकुल हो राम से कहता है— ढोल गँवार शुद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी। यहाँ पर समुद्र ने प्रचलित परम्परा को ही अभिव्यक्ति दी है। यदि हम दुराग्रहपूर्वक इसे मानसकार की ही अपनी बात मानें, तो फिर राम से समुद्र के प्रति उसने जो कुछ कहलवाया, उसे भी हम तुलसी की बात के रूप में स्वीकार करें। फिर, काकभुशुण्डि समुद्र के उद्देश्य से जो कहते हैं—काटेहिं पइ कदरी परह कोटि जतन कोउ सींच। विनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच।—समुद्र नीच है, इसलिए वह काटने और डाँटने योग्य है, तो इसे भी तुलसी के मत के ही रूप में ग्रहण करना होगा। अर्थात् तुलसी समुद्र जैसी ओछी बुद्धि रखने वालों को दण्डनीय मानते हैं, जो कि शूद्र और नारी को ताड़ना के योग्य समझती है।

चौथा आक्षेप तुलसी पर यह है कि उन्होंने 'मानस' के माध्यम से 'ब्राह्मणवाद' को प्रश्रय दिया और शूद्रों की निन्दा की। वे शील-गुण-हीन विप्र की तो पूजा का प्रचार करते हैं और 'गुणगण ज्ञान प्रवीण' शुद्र को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आक्षेप करते समय हम यह भूल जाते हैं कि 'मानस' की कथा के एक वक्ता हैं काकभुशुण्डि, जो एक शकुनाधम कौआ है। तुलसी के लिए किसी वर्णविशेष में उत्पन्न शरीर का महत्व नहीं, उनके लिए तो वही शरीर 'पावन' और 'सुमग' है, जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा। तात्पर्य यह है कि एक आस्तिक, सदाचारी शूद्र का शरीर एक नास्तिक, दुराचारी ब्राह्मण के शरीर की अपेक्षा निश्चय ही अधिक पावन और सुगम है। काक-भुशुण्डि-प्रकरण के माध्यम से तुलसी ने शूद्र को वैदिक ब्राह्मण से मंत्र प्राप्त करने तथा मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकारी माना। उनकी दृष्टि में भक्तों की बस एक ही जाति होती है और वे 'मानस' में इस सिद्धान्त का सर्वथा निर्वाह करते हैं।

अन्त में, जो तुलसी सीता-चरित्र की अभि-व्यंजना कर सकता है, अहल्या, तारा, और मन्दोदरी के गुणों को उजागर कर सकता है, जो राम के मुख से कैकेयी या मन्थरा के प्रति अना-दर का एक भी शब्द नहीं निकलवाता, जो बालि

या रावण के मुख से तारा या मन्दोदरी के प्रति एक भी कटु शब्द उच्चारित नहीं कराता, जो सीता-निर्वासन की कल्पना तक नहीं कर सकता और जो भवानी को श्रद्धा का मूर्त्तिमन्त विग्रह मानकर अपने हृदय का अर्घ्य अर्पित करता है, वह तुलसी कभी नारी-निन्दक नहीं हो सकता। उसके लिए नारी देवी है, माता है, जगजननी है। वह सब जग को 'सीय राममय' देखने का प्रयास करता है। जिस तुलसी के राम अछूत समझे जाने वाले 'निषादराज एवं कोल-किरातों को अपनी छाती से लगाते हों, काम-प्रधान बानरों और क्रोध-प्रधान राक्षसों को अपना मित्र और सुहृत् मानते हों, नीच जाति में उत्पन्न शबरी के जूठे बेरों को 'प्रेमसहित' खाते हों और उसे 'भामिनी' शब्द से सम्बोधित करते हों, जो तुलसी अपने 'मानस' में राम के द्वारा शुद्रक के बध की कल्पना न कर सकता हो, वह तुलसी कभी भी शूद्र-निन्दक नहीं हो सकता।

सारांश में, 'मानस' के ये सारे निहित आदर्श मानव-समाज को व्यवहार में उदारता, निर्भीकता, शील एवं अन्य समस्त सद्गुणों की ही शिक्षा देते हैं।

## स्वामी भूतेशानन्द स्मृति-अंक

विवेक शिखा का सितम्बर-अक्टूबर अंक **'स्वामी भूतेशानन्द स्मृति-अंक'** के रूप में प्रकाशित होगा। इसका मूल्य १५/- होगा। ग्राहकों को यह निःशुल्क भेजा जायगा। इनके अतिरिक्त जो व्यक्ति यह अंक लेना चाहते हैं वे अग्रिम १५ रु० भेज कर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें। श्रद्धालु भक्त इसके प्रकाशनार्थ सहयोग के रूप में आर्थिक दान देने की भी कृपा करें। अथवा विज्ञापन देकर सहयोग करें।

—व्यवस्थापक

# स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान–5

( गतांक से आगे )

—स्वामी शशांकानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची (बिहार)

करुणामयी माँ ने वीर सन्तान के मस्तक पर कल्याण हस्त रख श्रीरामकृष्ण का नाम लेकर आशीर्वाद दिया। उस पवित्र स्पर्श से स्वामीजी का हृदय दिव्य भाव से परिपूर्ण हो गया, उन्हें ऐसा लगा मानो वे एक ऐसी महान शक्ति के बल से बलवान हो गए हैं जो सभी प्रकार की विघ्न बाधा, विपत्ति सन्देह द्वन्द्व आदि के बीच उनके हृदय में सदैव अचल रहेगी, यहाँ तक कि मृत्यु का भय भी उन्हें अपने संकल्प से च्युक्त न करेगी।

इधर समुद्र पर खड़ी बानर सेना को साहस तो मिल गया। पर समुद्र पार जाए कौन? सब अपनी-अपनी शक्ति को सीमित बताने लगे। जाम्बवान ने कहा, "मैं बूढ़ा हो गया हूँ।" अंगद ने कहा, "मैं जा सकता हूँ पर लौटने में संदेह है।" जाम्बवान जी ने खामोशी से बैठे पवनपुत्र हनुमान जी की ओर देखते हुए सोचा जिन्हें भगवान ने कार्य सौंपा था वे तो चुप बैठे हैं वे तो जाम्बवान जी का आदेश चाहते थे। इसलिए

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना॥

जाम्बवान जी ने कहा 'हे हनुमान! तुम बलवान हो फिर चुप क्यों हो? तुममें तो बहुत बल है। पवनपुत्र हो और पवन के समान बल है। बुद्धि विवेक और विग्यान के तो तुम भण्डार हो। जगत में ऐसा कौन सा कार्य है जो तुम्हारे लिए कठिन हो और जिसे तुम नहीं कर सकते।

कवन सो काज कठिन जग माही। जो न होइ तात तुम्ह पाहीं॥

हनुमान जी प्रशंसा से फूले नहीं चुप ही रहे। जामवान जी ने पुनः कहा:

राम काज लगि तब अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा॥

हे हनुमान तुम्हारा तो जन्म ही श्रीराम के कार्य के लिए हुआ है। यह कार्य तो तुम्हें ही करना है। ऐसा सुनकर ही हनुमान जी ने पर्वत के समान रूप धारण कर लिया।

उन्हें यह विश्वास हुआ कि वे तो प्रभु के यन्त्र हैं और उन्हीं के कार्य के लिए उनका अवतरण हुआ है। वे लिखते हैं, वत्सगण मैं श्री जगन्माता के हाथ में यंत्रमात्र हूँ। उनकी इच्छा होने पर वे स्वयं ही मुझे वहाँ (सागर पार) भेज देंगी। यदि भगवान की ऐसी इच्छा होगी तो वे उपाय भी बता देंगे। (वि.च. 200)

स्वामी जी को श्रीरामकृष्ण देव ने चिह्नित किया था। उन्होंने दिवार पर लिख दिया था, "नरेन शिक्षा देगा जब दूर से बुलावा आयेगा" अब श्री श्री माँ के पास साहस बल प्राप्त कर सारा भारत भ्रमण कर वे समुद्र तीर पर पहुँचे थे और उन्होंने समुद्र पार जाने का संकल्प किया। इसी बीच स्वामीजी ने एक दिन स्वप्न देखा श्रीरामकृष्ण देव दिव्य देह धारण करके को समुद्रतट से विस्तीर्ण महासागर पर पैदल जा रहे हैं और हाथ से इशारा कर वे उन्हें अपने पीछे-पीछे बुला रहे हैं।

स्वामीजी को याद आ गया कि श्रीरामकृष्ण के युग कार्य के लिए ही तो उनका आगमन हुआ है। बस ऐसा सोचकर ही उनमें महान शक्ति का संचार हुआ। उनका साहस बल हिमालय की तरह विशाल हो गया।

हनुमानजी के पर्वताकार स्वरूप को सबने देखा :

कनक वरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥
सहित सहाय रावनहि मारी। आनऊँ इहाँ त्रिकुट उपारी॥

हनुमान जी महाराज का स्वर्णवर्ण विशाल शरीर और तेज देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो और एक गिरिराज खड़े हों। बार-बार सिंह गर्जना करते हुए वे कहने लगे, "इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ जाऊँगा सहायकों सहित रावण को मारकर मैं त्रिकुट पर्वत को यहाँ ला सकता हूँ।

स्वामीजी में भी वह भाव देखा जाता है।

वे अपने एक गुरु भाई को लिखते हैं "भाई सारदा! श्रीरामकृष्णदेव मेरे बारे में जो सब बातें कहा करते थे तथा जिन्हें मैं उस समय चपलतावय हँस कर उड़ा देता था वे सब अब धीरे-धीरे सत्य प्रतीत होती जा रही है। मैं उनका अनुभव भी कर रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे भीतर जो शक्ति है उसके द्वारा मै जग को उलट-पलट सकता हूँ।"

कूर्मस्तारकचर्वणं त्रिभुवनमुत्पाटयामः।

हम आकाश के तारों को चूर्ण कर सकते हैं त्रिभुवन को उखाड़ सकते हैं किन्तु क्या हनुमान जी में अहंकार का भाव नहीं है? नहीं क्योंकि तुरन्त ही वे जाम्बाबन जी से कहते हैं :

जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

जाम्बवान जी ने सोचा कि यह तो अनर्थ हो जाएगा। प्रभु की नरलीला का नाटक सब गड़बड़ा जाएगा। इसीलिए उन्होंने हनुमान जी को यह सीख दी।

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

हे तात्! तुम तो केवल सीता जी की खबर ले आओ और श्रीरामजी को अवगत करा दो। वे स्वयं अपनी भुजा के बल उन्हें छुड़ा लायेंगे। यह काम तो श्रीराम का है।

हनुमान जी को याद आ गया कि मैं तो प्रभु का दास हूँ। जाम्बवान जी ने भली कही प्रभु ने तो मुझे केवल सीता जी को खोज लाने का ही आदेश दिया अतः मुझे उतना ही करना चाहिए।

जामवंत के वचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।।
जब लगि आवौं सीतहि देखी। हो इहि काज मोहि हरष विसेषी ।।
यह कहि नाई सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ।।

जाम्बवान जी का उपदेश हनुमानजी को बहुत भाया तब उन्होंने जाम्बवान जी को आश्वासन देते हुए कहा कि यह कार्य निश्चय ही सफल होगा। मैं सीताजी की खोज लेकर आता हूँ। सबको सिर झुकाकार प्रणाम कर हृदय में श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए हनुमान जी चले।

स्वामीजी के जीवन में भी यह अहंकार की वाणी नहीं थी क्योंकि यद्यपि वे कहते हैं :

कूर्मस्तारक चर्वणं त्रिभुवनमुत्पाटयाम बलात्।

ऐसा कहने के बाद वे कहते हैं :

किं भो न विजानस्यस्मान्। रामकृष्ण दासाः वयम ।।

क्या आप लोगों को यह नहीं मालूम कि हम श्रीरामकृष्ण के दास हैं।

हनुमानजी की भाँति स्वामीजी भी अपने प्रभु के कार्य के लिए उनका स्मरण कर चले समुद्र पार। इसका वर्णन सत्येन्द्रनाथ मजूमदार 'विवेकानन्द चरित' में इस प्रकार करते हैं :

"हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में विदेशियों के भ्रमपूर्ण विश्वासों को दूर कर उसके उदार भावों का आधुनिक वातावरण के अनुकूल वैज्ञानिक युक्तियों द्वारा प्रचार करने के लिए—पाश्चात्य के भोग को ही सब कुछ मानने वाले जड़वाद के उन्मत्त कोलाहल का मंथन कर त्याग की पवित्र वाणी सुनाने के लिए—पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध में पड़े हुए, सनातन मूढ़ों को 'क्या अवलम्बनीय है' यह भली-भाँति समझाने के लिए आत्म-सम्मानविहीन निर्लज्ज हिन्दुओं को विदेशियों के पैरों तले बैठ धर्म की शिक्षा लेने से रोककर अपने ही घर में धर्म की खोज कराने के लिए—भारत के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक सत्यरत्नों की जगत् की सभ्यता को परख करा देने के लिए—एक आसन्नप्राय विनाश के पंजे से बचने के लिए पाश्चात्य जगत् को भारत के चरणों पर बैठकर धर्म की शिक्षा लेने को उच्च स्वर से बुलाने के लिए—सब से बढ़कर अपने आचार्य श्रीरामकृष्ण देव की इस मौलिक उपदेश-वाणी कि 'सभी धर्म सत्य हैं और वे ईश्वर की उपलब्धि के विभिन्न उपाय मात्र हैं' का प्रचार संकीर्णता, धर्मान्धता, कट्टरपन व घृणा के विरुद्ध सिंह-विक्रम के साथ करने के लिए 1893 ई० के 31 मई को अपने स्वातंत्र्य के गौरव से सिर ऊँचा किए स्वामी विवेकानन्द ने श्री गुरुदेव की मंगलमयी इच्छा से परिचालित होकर शिकागो की ओर प्रस्थान किया।"

मनुष्य जब तक अपने को तुच्छ शरीर या नश्वर देह ही मानता है, वह दुःखी तथा दीन-हीन रहता है। केवल रूदन ही उसके भाग्य में लिखा रहता है किन्तु वह अपने भीतर अन्तर्निहित अपने प्रकृत स्वरूप को जान ले तो दीन-हीनता का परित्याग कर अपूर्व बल, साहस और बुद्धि सम्पन्न हो जाता है। इसी प्रकृत स्वभाव को प्राप्त कर पवनदूत हनुमानजी ने स्वर्णशैल के समान पर्वताकार

रूप धारण किया और सिंहनाद करने लगे थे। इधर स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में भी देखा जाता है कि अपने प्रकृत स्वरूप का ज्ञान होने पर उन्होंने कहा था, "हम तारों को पीस देंगे और त्रिभुवन को उखाड़कर फेंक देंगे।" और इसी भाव को अपने-अपने जीवन में लेने के लिए स्वामीजी अपने शिष्यों को लिखते हैं—

किं नाम रोदसि सखे त्वयि सर्वशक्तिः
आमन्त्रयस्व भगवन् भगदम् स्वरूपम्
त्रैलोक्यमेतदखिलं तव पादमूले
आत्मैव हि प्रभवते न जड़ कदाचित् ॥

"तुम क्यों रोते हो सखे, तुममें सर्वशक्ति है, अपने शक्ति स्वरूप को प्रकाशित करो—भगवद् स्वरूप को जाग्रत करो। यह सारा विश्व (त्रिलोक) तुम्हारे चरणों में लोट जायगा। आत्मा ही एकमात्र प्रभुत्व प्राप्त करती है, जड़ नहीं।" जो भी इस भाव को लेगा वही प्रभु का कार्य समाप्त करेगा।

अपने स्वरूप को पहचान हनुमानजी सबको प्रणाम कर भगवान का स्मरण कर लंका की ओर समुद्र के ऊपर ऐसे चलने लगे मानो श्रीराम के हाथ से छूटा हुआ अमोघ बाण लंका की ओर तीव्रगति से जा रहा हो। बाण की शक्ति का स्रोत जैसे श्रीराम ही हैं, वैसे ही हनुमानजी की शक्ति का स्रोत भी स्वयं कालेश्वर भगवान श्रीराम ही हैं। भगवान शंकर कहते हैं—

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥

प्रभु यदि चाहें तो तिनके को भी महाशाली बना सकते हैं।

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना ॥

इस अमोघ बाण की महिमा यह है कि जो भगवान की शरण में आयेंगे वे तो बच पायेंगे और जो नहीं आयेंगे वे बिंध जायेंगे। हनुमानजी रूपी बाण द्वारा विभीषण बच जायगे पर रावणादि बिंध जायेंगे।

इन्द्र के पुत्र जयन्त का प्रसंग लीजिए। श्रीराम माता जानकी के साथ बैठे हुए थे। जयन्त कौए के रूप में उनकी परीक्षा लेने गया और माता जानकी के पाँव के अंगूठे में चोंच मारकर जखम कर दिया। उस समय भगवान राम सीकों से सीताजी का आभूषण बना रहे थे। जिस सींक से भगवान सीताजी के लिए आभूषण बना रहे थे उसी सींक से तीर बनाकर उन्होंने जयन्त पर छोड़ दिया। जो सीताजी के लिए आभूषण था वही जयन्त के लिए काल बनकर उसके पीछे दौड़ा।

लव निमेष परमाणु जुग बरस कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड ॥

काल उनका धनुष है और समय का विभाजन ही बाण अर्थात् ईश्वर के हाथ में काल ही धनुष है जिस पर समय का बाण चूक रहा है। जो राम की शरण में नहीं आते उनका भजन नहीं करते उनके लिए यह काल दण्ड है। उससे कोई भी नहीं बच सकता।

श्रीराम का बाण जयन्त के पीछे गया। जयन्त बचने के लिए जहाँ-जहाँ गया श्रीराम का तीर भी वहीं-वहीं गया।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकई राम कर द्रोही॥

श्रीराम का बाण जब चलता है तो उसे कोई भी नहीं बचा सकता। वहाँ कोई सिफारिश भी नहीं चलती। स्वयं देवराज इन्द्र का लड़का जयन्त भी न बच सका। तीनों लोकों में किसी ने उसे बैठने तक को न कहा।

जब जयन्त भागा जा रहा था तो अचानक नारद जी उसे मिले और उसे सद्बुद्धि दी, "अरे जयन्त तेरे पीछे तो भगवान् राम का अमोघ बाण लगा हुआ है इससे तो एक मात्र रक्षा भगवान् श्रीराम की शरण ही कर सकती है। अत: तू दर-दर न भटक कर उसी के पास जा जिसके पास धनुष है अर्थात् श्रीराम की शरण ले।"

पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।

कलियुग में स्वामी विवेकानन्द जी भी श्रीरामकृष्ण के अद्वैत ज्ञान रूपी अमोघ बाण की तरह चले। इस अमोघबाण की महिमा यह है कि जो अध्यात्मवादी होकर अद्वैत ज्ञान के सामने समर्पण कर देंगे वे तो बच जायेंगे और जो संकीर्णता, धर्मान्धता, कट्टरपन घृणा या भौतिकवाद की दोहाई देकर एकत्व बोध का विरोध करेंगे वे बिंध जायेंगे।

आध्यात्मिकता ही पृथ्वी को बचा सकती है और अद्वैतज्ञान पृथ्वी पर शान्ति सुख ला सकता है। नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय और कोई दूसरा पथ नहीं है।

स्वामीजी ने कहा था यदि आगामी पचास वर्षों में यूरोप आध्यात्मिकता को नहीं अपनाता है तो ध्वंस को प्राप्त होगा।

स्वामीजी प्रभु श्रीरामकृष्ण के हाथ से निकले बाण थे जिसकी शक्ति का स्रोत स्वयं श्रीरामकृष्ण ही थे। स्वामी विवेकानन्द जी ने स्वयं कहा था कि यदि श्रीरामकृष्ण चाहें तो सैकड़ों विवेकानन्द बना सकते हैं।

जब हनुमानजी महाराज समुद्र के ऊपर उड़े जा रहे थे तब ही समुद्र ने हनुमानजी के विश्राम के लिए मैनाक पर्वत को भेजा।

हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रणाम।
राम काजु किन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम॥

हनुमानजी ने मैनाक पर्वत को स्पर्श कर प्रणाम किया और अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की और कहा "श्रीराम का कार्य सम्पन्न नहीं होने तक मुझे कहाँ विश्राम अर्थात् मैं जब तक माता जानकी की खोज लेकर श्रीराम को न बता दूँ मैं विश्राम नहीं करूँगा।

स्वामीजी के जीवन में भी इसी प्रकार की घटना घटी। पूना से जब स्वामीजी ने महाबलेश्वर की ओर प्रस्थान किया तो अकस्मात् एक दिन राजपथ पर लिंबड़ी के ठाकुर साहब अपने गुरुदेव को दीन वेष में देखकर उन्हें अपने घर लिवा लाए और बोले, "महाराज इस प्रकार व्यर्थ का भ्रमण-क्लेश क्यों सहन कर रहे हैं? आपको अब मैं न छोड़ूँगा, दया करके मेरे साथ चलिए, लिंबड़ी में आपको स्थायी रूप से रहने के लिए भली-भाँति व्यवस्था कर दूँगा।

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "ठाकुर साहब एक अद्भुत शक्ति मुझे जबरदस्ती घुमा रही है। भगवान श्रीरामकृष्णदेव मेरे कन्धे पर एक महान कार्य का भार सौंप गये हैं। जब तक वह कार्य समाप्त न होगा तब तक विश्राम करने की आशा व्यर्थ है। यदि जीवन में कभी विश्राम करने का अवसर मिला तो आपके साथ जरूर रहूँगा।

अब हनुमान जी महाराज आगे बढ़े तो उन्हें सुरसा मिली।

देवताओं को सन्देह हुआ था कि हनुमान जी यह कार्य कर पायेंगे कि नहीं। इसीलिए उनकी बुद्धि की थाह पाने के लिए उन्होंने सुरसा को भेजा। सुरसा आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को खाकर अपनी भूख मिटाती थी। आज हनुमानजी को आकाश में उड़ते देखकर सुरसा ने कहा, "अहा! आज देवताओं ने मुझे खाने के लिए अच्छा आहार भेजा है।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत वचन कह पवन कुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तब बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥ (क्रमशः)

## विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

| संरक्षक का नाम | स्थान | रुपये |
|---|---|---|
| १. श्रीमती कमला घोष | इलाहाबाद | ३,९९०/- |
| २. श्री नन्द लाल टांटिया | कलकत्ता | १,०००/- |
| ३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा | जम्मूतवी | १,०००/- |
| ४. श्रीमती निभा कील | कलकत्ता | १,०००/- |

# सरल करो प्रभु, सरल करो

—रवि प्रकाश
छपरा (बिहार)

षट्-सम्पत्ति से युक्त करो,
जरा - मरण से मुक्त करो,
पद - सेवा - संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

वैराग्य - त्याग से युक्त करो,
अहमासक्ति - विमुक्त करो,
स्वदर्शन में संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

ब्रह्मचर्य से युक्त करो,
असंयम से मुक्त करो,
ब्रह्म - सिंह - संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

षट्चक्रों में मन युक्त करो,
अवसादों से मुक्त करो,
माँ कुलकुंडलिनी - संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

भक्ति - ज्ञान से युक्त करो,
चंचल मन से मुक्त करो,
नित्य - योग - संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

ध्यान - धारणा युक्त करो,
अज्ञान तिमिर से मुक्त करो,
आत्मानुभूति - संयुक्त करो,
सरल करो प्रभु, सरल करो।

# सम्पूर्ण जीवन की योजना—
# आश्रम व्यवस्था

—श्री जितेन्द्र वीर गुप्ता
पूर्व मुख्य न्यायाधीश
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चण्डीगढ़

आज के युग में योजना का बहुत महत्त्व है। चर्चा होती है "Family Planning". (परिवार नियोजन) की। यह योजना बहुत छोटी तथा अधूरी है। जीवन को सम्पूर्ण योजना में यह छोटी योजना समाहित है। अतः Plan the whole life, that will include the so called family planning also. यानी सम्पूर्ण जीवन की योजना बनाओ जिसमें परिवार-नियोजन का भी समावेश रहेगा। इसलिए भारत को ऋषियों द्वारा दी गई सम्पूर्ण जीवन को योजना का नाम है—आश्रम व्यवस्था।

आज व्यक्ति दुखी है, चिन्तित है, भयग्रस्त है, अपने भविष्य के बारे में शंकित है। वास्तव में सारा जीवन ही लक्ष्यहीन है। कहाँ जाना है, इसका पता नहीं—अंधेरे में है। आगे दिखाई भी नहीं देता। कारण स्पष्ट है कि जीवन में कोई उद्देश्य न होना ही इसका मूल कारण है। असफलता नहीं, अपितु निम्न विचार अथवा आदर्श पाप है। "Not failure but low ideal is crime." भारत में इसका चिन्तन हुआ है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति को क्या करना है अथवा क्या अपेक्षित है, इसका गम्भीरता से विचार किया गया है। इस चिन्तन में से उदय हुई है—आश्रम व्यवस्था।

चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम, और उनके चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। एक प्रकार से ये जीवन यात्रा के चार पड़ाव हैं जहाँ पहुँचने पर व्यक्ति को बदलना होता है। चलते-चलते गाड़ी तो आगे बढ़ रही है परन्तु व्यक्ति गन्तव्य स्थान पर आने पर उतरने को तैयार नहीं। उसी में बैठा रहना चाहता है। अतः भटक गया है। क्योंकि गाड़ी ने तो कांटा बदल लिया है। व्यक्ति ने जंक्शन आने पर अपने आप को बदला नहीं। इसी कारण से परिवार टूट रहे हैं। व्यक्ति दुखी है। यह वह समझ नहीं पा रहा है।

ये चार आश्रम (Stage in life) अलग-अलग नहीं हैं। It is a continuous process. यह एक सम्पूर्ण चिन्तन है। प्रत्येक आश्रम में आने वाले आश्रम की तैयारी है। ब्रह्मचर्य आश्रम में परिश्रम, पुरुषार्थ, साधना एवं तपस्या है। क्योंकि जीवन में कुछ भी प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। इसी कारण प्रातःकाल उठकर अपने हाथों के दर्शन करने की अति श्रेष्ठ परम्परा रही है। इसी दर्शन अथवा पुरुषार्थ करने से सरस्वती (विद्या) लक्ष्मी (धन), प्रत्यक्ष गोविन्द (भगवान) मिलते हैं। अतः पुरुषार्थ करने का अभ्यास अर्थात् कठोर जीवन व्यतीत करने की आदत इस आश्रम की विशेषता है। यह आज नहीं हो रहा है इसलिए समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। अतः जीवन में परिश्रम करने का अभ्यास इस काल में अनिवार्य है, अपेक्षित है। इसी पुरुषार्थ से भविष्य में समाज एवं राष्ट्र की समस्याएँ हल हो सकती हैं।

कोरी नारेबाजी अथवा आन्दोलन के आधार पर देश प्रगति नहीं कर सकता। आज व्यक्ति जहां है, जो भी काम उसके जिम्मे है, वह खेत में किसान हो, मजदूर हो, विद्यार्थी हो और कोई भी काम करने वाला हो, सभी को प्रामाणिकता से परिश्रम कर अपने पुरुषार्थ का परिचय देने की आवश्यकता है। यही आज के समय में सबसे बड़ी देशभक्ति है। दूसरे शब्दों में यह धर्म अर्जन का आश्रम है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व की तैयारी है।

गृहस्थ आश्रम भोग का आश्रम है। अर्थ और काम दोनों पुरुषार्थ अर्जन करने का समय है। अपने ऋषियों ने अर्थ और काम के महत्व को समझा है। उसको नकारा नहीं है पर उसको धर्म और मोक्ष में बांध कर रखा है। इन दोनों पाटों के बीच में अर्थ और काम का प्रवाह रहना चाहिए तभी यह कल्याणकारी है अन्यथा यह दुःखदायी सिद्ध होगा। अर्थात् पैसा कमाना चाहिए परन्तु धर्म के अनुकूल। मनुष्य भोग करे परन्तु संयम के साथ। बिना संयम का भोग दुःख देता है। संयम के साथ किया हुआ भोग सुख देता है। परन्तु उसके साथ चेतावनी भी है कि भोग का सुख क्षणिक है अन्ततोगत्वा दुःखदायी है। जीवन का लक्ष्य तो मोक्ष की प्राप्ति है। अर्थात जितना सुख भोग में है, उससे कहीं अधिक सुख छोड़ने में है।

अब इस अर्थ और काम से मुक्ति का समय आ जाता है। जब परिवार अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, परिवार के सब लोग अपनी जिम्मेवारी वहन करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे समय में व्यक्ति को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के लिए कार्यशील होना चाहिए। यहाँ से प्रारम्भ होता है तीसरा आश्रम—वानप्रस्थ। यह विसर्जन का समय है। समाज से जो लिया है, वह समाज को देने का समय है। अपने अन्दर जो भी गुण सम्पदा है, उसके माध्यम से समाज सेवा का व्रत लें। अब उसका परिवार बड़ा हो गया है। सम्पूर्ण समाज उसका परिवार है। अतः अपने 'स्व' के विस्तार का अवसर है यह वानप्रस्थ आश्रम। व्यक्ति पर कई प्रकार से ऋण हैं— मातृ ऋण, पितृ ऋण और समाज का ऋण— इन ऋणों से मुक्त होने का समय आ गया है।

संन्यास आश्रम में प्रवेश करने पर व्यक्ति अपने आप को वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा के लिए प्रस्तुत होता है और बढ़ते-बढ़ते सम्पूर्ण चराचर मेरा है यह भाव जागृत होता है और फिर उसी चराचर में विलीन होने का समय आ जाता है। ऐसे समय में व्यक्त आनन्द और सुख से समाधानपूर्वक एक रूप हो जाता है, उस अव्यक्त से जहाँ से वह इस व्यक्त रूप में आया है :—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनानि एव तत्र का परिदेवना॥

यह जीवन की एक सफल यात्रा है जहाँ न कोई चिन्ता है न कोई भय है केवल आनन्द और सुख की अनुभूति है, समाधान है। व्यक्ति इस आश्रम व्यवस्था अनुसार जीवनयापन करे इसकी आज आवश्यकता है। यही सुख और शान्ति का मार्ग है।

प्रत्येक हिन्दू, चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो, किसी जाति का हो, मोक्ष का इच्छुक है। यह इस भूमि की उपज है। मोक्ष प्राप्ति का यह प्रयत्न तो जन्म लेने के बाद बड़ा होने पर प्रारम्भ हो जाता है। विद्यार्थी जीवन में विद्या अर्जन करना, ज्ञान प्राप्त करना मोक्ष के साधन हैं। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन में अर्थ और काम के लिए होने वाले पुरुषार्थ इसी मोक्ष प्राप्ति का एक सोपान है, विरोधाभास नहीं है। इसी प्रकार

समाज सेवा एवं राष्ट्र सेवा भी एक साधन है इस मोक्ष प्राप्ति का और जहाँ अन्त होता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत् ॥

अब समय आ गया है यह कहने का कि सारा चराचर मेरा है क्योंकि अब इस चराचर में विलीन होना है। ऐसे समय में न कोई चिन्ता है, न कोई भय है, केवल सन्तोष है और समाधान।

प्रश्न है कि यह कैसे हो। त्याग एक सत्य है जिसको व्यक्ति भूल रहा हैं, It is a hard fact of life which we are ignoring hence we are suffering. यह जीवन का कटु सत्य है जिसको आज व्यक्ति अनदेखा कर रहा है। इसका अभ्यास अथवा आदत चाहिए। सब छोड़कर जाना है यह सत्य है। परन्तु No detachment is possible without attachment. Attachment to a higher ideal automatically detaches you from lower ideals. निरासक्ति विना आसक्ति के सम्भव नहीं। इसलिए कहा जाता है कि आप प्रभु से अपना मन लगा लें तो ये बन्धन छूट जायेंगे। परन्तु प्रभु तो दिखाई नहीं देता, जो दिखाई देता है वह तो समाज है, जो भगवान का रूप है। इसी की सेवा करें। इस समाज को अपना परिवार मानकर इसकी सब प्रकार से सेवा ही भगवान की पूजा है। फिर आगे बढ़ें वसुर्धव कुटुम्बकम की अवधारणा करें। आज व्यक्ति प्रभु से नाता जोड़कर स्वार्थी बनता हुआ दिखाई देता है, केवल अपनी चिन्ता, समाज की चिन्ता नहीं। अतः स्वामी विवेकानन्द जी ने संन्यासी को भी समाज का काम करने की प्रेरणा दी। "आत्मनो मोक्षार्थम् जगत हिताय च" वह इस काम को ही अपनी पूजा समझें, इसी भावना से काम करें। किसी भी काम को पूजा बनाया जा सकता है, जब केवल दया अथवा सेवा भाव से नहीं पूजा भाव से काम करेंगे। "शिव भाव से जीव सेवा" (श्री रामकृष्ण परमहंस) जीवन के इस चिन्तन से व्यक्ति, परिवार, समाज और सारा विश्व सुखी बनेगा। इसी श्रद्धा और विश्वास से इस आश्रम व्यवस्था का पालन करें।

---

अपने स्नायु शक्तिशाली बनाओ। हम लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु चाहते हैं। हम बहुत रो चुके—अब और अधिक न रोओ, वरन् अपने पैरों पर खड़े होओ और मनुष्य बनो।

सबसे पहले हमारे तरुणों को मजबूत बनना चाहिए। धर्म इसके बाद की वस्तु है। मेरे तरुण मित्रो! शक्तिशाली बनो, मेरी तुम्हें यही सलाह है। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा ही स्वर्ग के अधिक समीप पहुँच सकोगे। ये कुछ कड़े शब्द हैं, पर मैं उन्हें कहना चाहता हूँ, क्योंकि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

—स्वामी विवेकानन्द

# स्वामी विवेकानन्द मुझे क्यों प्रिय हैं ?

—श्रीमान् रवि प्रकाश
प्रथम वर्ष, विज्ञान
राजेन्द्र कॉलेज, छपरा (बिहार)

स्वामीजी के प्रति मेरा प्रेम तथा मेरी भक्ति पुरातन न होते हुए भी उनकी अहेतुकी कृपा से अगाध तथा अटल है। उनके बारे में श्री श्री ठाकुर का वक्तव्य था कि, "नरेन अखण्ड के राज्य का भी अतिक्रमण कर नित्य निर्विकल्पावस्थालीन सप्तर्षियों में से एक है।" अकल्पनीय रूप से चित्तहारी, सुन्दर मुख, जो भव्य, गंभीर तथा आत्मतेजालोकित था; शरीर, जो सबल एवं सुदृढ़ था; नयन जो योगियों की तरह, पद्मदलों की तरह स्निग्ध तथा उनसे कहीं अधिक सम्मोहक थे, के स्वामी श्री श्री स्वामी विवेकानन्द प्रथम-दर्शन में ही मन हर लेते हैं तथा हृदय में आ विराजते हैं। यह दर्शन उनके प्रति आकर्षण तथा भक्ति का कारण बना।

तत्कालीन तथा वर्त्तमानयुगीन धर्मानुभूतिहीन समाज धर्म तथा परमेश्वर को मात्र श्रद्धा तथा विश्वास के भ्रमाधार पर खड़ा एक काल्पनिक भवन जानकर उनका तिरस्कार करता है तथा इस कारण नास्तिकता तथा अज्ञानांधकार में पतित होता जा रहा है और असदाचार के पंक में सना जा रहा है। वर्त्तमान वैज्ञानिक-युग में तर्क-वितर्क तथा दर्शन को ही प्रमाण मानकर चलने वाले, जड़वाद-ग्रसित तथा भोगलीन व्यक्ति ईश्वर के प्रत्यक्षीकरण के पूर्व उनके एकमेवाद्वितीयअस्तित्व को मानने से मना कर देते हैं, परन्तु उनके दर्शन के लिए तथा उनके अस्तित्व के प्रमाण की प्राप्ति के लिए वे अपने व्यवहार को सुधारने तथा साधना की तैयारियाँ नहीं करते हैं। अतएव, वे मानव जन्म के एकमात्र लक्ष्य भगवत् प्राप्ति से च्युत होकर भोग-पंक-पतित हो जाते हैं। इस कारण कई पीढ़ियाँ व्यर्थ स्वचरित्र-हनन कर सच्चिदानन्द के राज्य की अधिकारिणी नहीं बन पाईं तथा अन्य मनुष्यों जो सर्वेश्वर के अस्तित्व को मानते हैं, के विश्वास का आधार अपरोक्षानुभूति न होकर उनके भोगों तथा लाभों में असामान्य वृद्धि है। इस निम्न भावना को लेकर ईश्वर को विस्मृत कर दिया गया है तथा उसे मात्र एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान बना दिया गया है, जहाँ लोग कुछ पुष्पों, कुछ अगरबत्तियों को चढ़ाने तथा दिखाने के बदले भोग, बुद्धि, विद्या, बल तथा कष्ट निवारण को प्राप्त करते हैं। भक्ति तो अतिदुर्लभ हो गई है। इन सभी पथभ्रष्टों को चैतन्य प्रदान करने के लिए श्री श्री स्वामी जी ने कहा—"विश्व के सभी धर्म धर्म-संस्थापकों तथा उनके शिष्यों की अनुभूतियों पर आधारित हैं तथा इन धर्मों का उचित-रूप से पालन हमें ब्रह्मानुभूति प्रदान कर सकता है।" उन्होंने ऋषि-मुनियों, परमहंसों के उदाहरण दिये। ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, गुरुनानक देव, श्री कृष्ण तथा अवतारवरिष्ठ श्री ठाकुर की आध्यात्मिक अनुभूतियों का उदाहरण देकर मानव को धर्म का यथार्थार्थ बताया तथा अनुप्राणित करना चाहा। उन्होंने साधना को परमावश्यक बताया। उन्होंने कहा कि ब्रह्मानुभूति की योग्यता अर्जित की जा सकती है। कुछ मनुष्यों की यह धारणा है कि साधना-लब्ध अनुभूतियाँ पहले संभव

थीं पर आज नहीं। परन्तु स्वामी जी ने हीन-भावना-ग्रस्त तथा स्वाभिमानहीन मानव के प्रसुप्त सिंह को जाग्रत करने के लिए यह बतलाया कि "एकरूपता प्रकृति का सबसे बड़ा नियम है। अतएव, आत्मानुभूति वर्त्तमान-काल में भी संभव है। अतः एक निर्दिष्ट साधना प्रणाली को लेकर सरल भाव से साधना करते जाओ तथा उस इन्द्रियानुभूत्यातीत सत्य अर्थात् परब्रह्म को प्रत्यय करो तथा उनके अस्तित्व वा अनस्तित्व का निश्चय करो।

धर्म-भाव के हनन मात्र से मानव-मन भोग-गर्त्त में पतित हो ईर्ष्या-द्वेष, राग, आसक्ति, क्रोध, हिंसा, चंचलता, अब्रह्मचर्य, स्तेय, असंतोष, परिग्रह, असत्यादि अवगुणों के अंधे कुएँ में गिरता जा रहा है। अतएव, आज की प्रमुखतम आवश्यकता धर्म ही है। स्वामीजी ने धर्म-रूपी रज्जु के द्वारा अपनी वाणी सुनने वाले मनुष्यों को अज्ञान-गर्त्त से धर्म-तल पर लाने के लिए अथक एवं सफल प्रयास किया। उन्होंने कहा, "चित्तशुद्धि तथा हृदय-विस्तारण द्वारा अपने भीतर छिपे ब्रह्म-सिंह को जाग्रत करो तथा स्वास्तित्व-ज्ञान करो।

भारतीय नवजागरण को शंख-ध्वनि करने वालों में स्वामीजी का स्थान अद्भुत है। (प्रेमचंद) भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान करने वाले नेताओं ने स्वामीजी के कथनों तथा भावों को गंगा में स्नान कर स्वयं को अधिक दृढ़ देशभक्त के रूप में पाया तथा धर्म की ओर झुक कर विवेकी तथा न्यायी हुए। मेरी ही वय में (१५-१६ वर्ष वय में) श्री सुभाषचन्द्र बोस ने श्री स्वामीजी के भावों का अध्ययन किया तथा उनके प्रभाव-वर्णन के क्रम में उन्होंने व्यक्त किया कि, "स्वामी जी की वाणी ने मेरे मस्तिष्क को हिला दिया तथा सब कुछ उलट-पुलट कर रख दिया, मेरी सत्य-निष्ठा को उच्चतर सत्य की ओर आकृष्ट किया।" महात्मा गाँधी ने सत्य को आदर्श मान आजीवन दृढ़तापूर्वक उसका पालन किया। उन्होंने कहा कि, "स्वामी विवेकानन्द भारतीय संस्कृति के प्रतीक तथा सत्य-निष्ठों, राष्ट्र-भक्तों तथा पांडितों के लिए अनन्त शक्ति-स्रोत हैं।

स्वामी जी ने सर्वधर्म सम्मेलन में जो सर्वधर्म समन्वयात्मक भाषण दिया, उसकी ओजस्विता, तेजस्विता, माधुर्य, गांभीर्य तथा शक्ति आज भी श्रोता को भावावेशित कर देती है। उन्होंने घोर जड़ एवं भौतिकवाद ग्रस्त पाश्चात्यों को जगद्गुरु आर्यावर्त के बारे में बताया तथा हिन्दुओं के बारे में सत्य ज्ञान दिया कि हिन्दू-धर्म अनेक पथों के एक समुह का नाम है, जो भगवान् तक जाते हैं। अनासक्त कर्म या कर्मयोग, जो पाश्चात्यों के लिए एक अभिनव विचार था, का ज्ञान-दान-प्रदान करके उनकी चित्तशुद्धि एवं उनके हृदय-विस्तारण का चिरकालावरूद्ध मार्ग उन्होंने खोल दिया। उनके ओजस्वी उपदेशों, जिनमें सत्य एवं ब्रह्माभास था, ने सम्पूर्ण विश्व को विजित कर लिया था तथा उनके (पाश्चात्यों के) बंधनों के नाश का तथा आर्यावर्त के सम्मान का मार्ग खोल दिया था। स्वामीजी ने युक्तिपूर्वक तर्क-विचार द्वारा पाश्चात्यों का अहं तोड़ा तथा ब्रह्म के अस्तित्व का पक्ष मजबूत करते हुए उसे श्रद्धा-विश्वासाधारित कल्पना न मानते हुए अनुभूति-लब्ध बताया।

स्वामीजी के गुण भी उनके स्वरूप के समान अनन्त हैं। स्वामीजी षट्सम्पत्ति-यम्-नियमादि तथा साधना के जीवंत प्रमाण हैं। वे अपने गुरुदेव के समान सरल-सरस तथा प्रेम एवं आनन्द पूर्ण हैं। वे अनन्त ज्ञान-ध्यान-भक्ति तथा कर्म में निमज्जित हैं तथा भगवत्-प्राप्ति में सहायक हैं। उन्होंने कहा था कि, "प्रत्येक जीव एक अव्यक्त

ब्रह्म है, स्थान-स्थान पर मात्र इसके प्रकाश में अन्तर है तथा इसके प्रकाश को पूर्णतया व्यक्त करना ही जीव का लक्ष्य है। इस कथन द्वारा वे समता, जीव के स्वरूप तथा उसके लक्ष्य का स्मरण करा रहे हैं। उन्होंने हम क्षुद्रों को नित्यानन्दमय आत्मा कहा तथा हमारे ब्रह्म-सिंह को जगाने के लिए अनेक उद्दीपक उपदेश दिए। उन्होंने हमें हमारे आदर्श तथा उपास्यों के उदाहरण दिये तथा हमें चित्तशुद्धि, ब्रह्मानुभूति तथा निर्विकारावस्था प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित किया।

मेरी छोटी तथा अपरिपक्व बुद्धि के अनुसार ये ही वे कारण हैं, जो स्वामीजी के प्रति मेरे आकर्षण का कारण बने।

( पृष्ठ १४ का शेष )

श्रीरामकृष्ण के भक्त के लिए उनके जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है सच्चे श्रीरामकृष्ण की खोज करने को। उनका सच्चा भक्त उनके जीवन एवं शिक्षा के विषय में पढ़कर अथवा सुनकर कभी-कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाता। अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग कर उस सच्चाई को जानने हेतु प्रयत्नशील रहता है जिसकी तुलना में यह ज्ञान केवल छायामात्र ही होता है। वह शीघ्र ही जान पाता है कि यह रहस्यमय अनुसन्धान उसे उसकी आत्मा की गहराइयों में ले जा रहा है जो दिव्यता के संसार का मुख्यद्वार है। वहीं पर असली श्रीरामकृष्ण को पाया जा सकता है।

असली श्रीरामकृष्ण अज्ञात अवश्य है, परन्तु अज्ञेय नहीं हैं। यदि वे स्वयं को प्रकाशित करें तभी उन्हें जाना जा सकता है। और वे सच्चे साधक को गुप्त रूप से हृदय की गहराइयों में स्वयं को प्रकट करते हैं तथा इस तरह साधक की अनादि काल की व्याकुलता को परिपूर्ण कर देते हैं।

अवतार विभिन्न एवं रहस्यपूर्ण ढंग से धन्यभाग भक्तों को दर्शन देते हैं तथा उन्हें असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाते हैं। ये भाग्यशाली भक्तगण उनके विषय में क्या अनुभव करते हैं, इसका चित्रण स्वामी अभेदानन्द ने, जो स्वयं उन्हीं में से एक थे, निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :

—'हे प्रभु ! मैं तुम्हारे सच्चे स्वरूप को नहीं जानता। उस सत्य को आप जिस भी ढंग से मुझे प्रदर्शित करेंगे, मैं उसी को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।'

**तत्त्वं देव न जानामि रामकृष्णाय तव प्रभो।**
**यादृशोऽसि कृपासिन्धो तादृशाय नमो नम, ॥+**

*(Eastern & Western disciples : Advaita Ashrama, The life of Swami Vivekananda, 1974, p : 505)

+ ('Srl Ramakrishna Gunamrtam', 9 , in swami Abhedananda, songs Divine, trans. P. Seshadri ,Calcutta : Ramakrishna Vedanta Math, 1944, p. 58)

(प्रस्तुत लेख अद्वैत आश्रम, मायावती से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के मार्च १९७९ के सम्पादकीय अंग्रेजी लेख का हिन्दी रूपान्तरण है।)

# श्रीरामकृष्ण मठ

मयलापुर, चेन्नई-६०० ००४

फोन : ४९४१२३१, ४९४१९५९ फैक्स : ४९३४५८९

Website : www. Sriramakrishna Math. org

email srkmath @ vsnl.com


८ जनवरी, १९९९

प्रिय बन्धु,

स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा उपदेशों के प्रत्येक अध्येता के लिए विवेकानन्दार इल्लम एक पुनीत भवन तथा तीर्थस्थान है। आपको विदित होगा ही कि सौ वर्ष पूर्व फरवरी १८९७ ई० में स्वामी विवेकानन्द चेन्नै के आइस हाउस या कैसल कर्नन नामक इसी बँगले में पधारे थे। उन्होंने यहाँ पूरे नौ दिन निवास करते हुए बहुत-से आगन्तुकों से भेंट की, भजन गाये, प्रार्थना की और ध्यान किया। यह स्थान अब भी उनकी अदृश्य तथा दिव्य उपस्थिति से स्पन्दित है।

उन्होंने इसमें ६ से १४ फरवरी तक निवास किया तथा भारत के पुनर्निर्माण हेतु भावोत्तेजक भाषण दिये, जो अब 'भारतीय व्याख्यान' नामक पुस्तक में उपलब्ध हैं। फिर १८९७ ई० में स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई तथा एक महान सन्त स्वामी रामकृष्णानन्द के तत्त्वावधान में यहाँ रामकृष्ण मठ की स्थापना हुई, जो १९०६ ई० तक इसी पुनीत भवन में चलता रहा। इस प्रकार यह भवन दक्षिण भारत में रामकृष्ण संघ के प्रथम केन्द्र का निवास होने के साथ ही एक ऐतिहासिक स्थल भी है, जहाँ से स्वामीजी ने पूरे राष्ट्र को सन्देश दिया।

हम यहाँ एक स्थायी प्रदर्शनी बनाना चाहते हैं, जिसमें स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा सन्देश और भारतीय संस्कृति के उच्च तत्त्वों को प्रदर्शित किया जा सके। हमारी अभिलाषा है कि इसे एक ऐसा केन्द्र बनाया जाए, जहाँ से स्वामीजी के जीवनदायीन सन्देश को पूर्णाकार चित्रों, सुन्दर तैलचित्रों, मॉडलों, वीडियोग्राफ और फिल्मों द्वारा प्रचारित किया जाए।

यह भवन १८४२ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान निर्मित हुआ था और सबसे पहले तो इसका समुचित जीर्णोद्धार आवश्यक है। इस परियोजना में लगभग १.५ करोड़ रुपयों की लागत आयेगी। इसका कार्य शीघ्र ही आरम्भ होने जा रहा है, अत: आपसे अनुरोध है कि इस पुण्य कार्य में उदारतापूर्वक सहयोग करके आप श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद तथा विवेकानन्द-अनुरागियों की कृतज्ञता के भाजन बनें। इस प्रकार के दान आयकर से मुक्त हैं। चेक या ड्राफ्ट कृपया 'रामकृष्ण मठ, चेन्नै' के नाम से भेजें।

मानवता की सेवा में आपका

स्वामी गौतमानन्द

# एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

**स्वामी सुवीरानन्द**

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

**नोट :**—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।